तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर न्यास

बच्चे, भगवान के प्रतिबिम्ब माने जाते हैं। अनाथ बच्चों को सम्मानपूर्वक आश्रय देने के लिए, मानवतावादी दृष्टि के साथ, १९४३ में, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर न्यास को स्थापित किया। जिन बच्चों ने अपने माँ-बाप खो दिये, आर्थिक विपन्नता के कारण जो माँ-बाप अपने बच्चों का दायित्व लेने में असमर्थ हैं, ऐसे बच्चों की रक्षा के लिए यह संस्था अपना हाथ बढ़ाती है। पढ़ाई के उपरांत उनको सभ्य समाज में सकुशल भेजती है। अबोध एवं व्यथित बच्चों को समुज्जवल भविष्य प्रदान करने के लिए करुणार्द्र हृदयी दाता वसुधैव कुटुम्बकम् के बल पर श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर को दान दें और भाग्यप्रदाता कलियुग दैव का अनुग्रह प्राप्त करें।

दाताओं को अनुभाग 80(G) के आधार पर आयकर की छूट मिलती है

माँग ड्राफ़्ट/चेक भेजने का पताः

मुख्य गणांकाधिकारी

ति.ति.दे, प्रशासनिक भवन

के.टी.रोड, तिरुपति - 517501

फ़ोन नंः 0877-2264249

अतिरिक्त समाचार के लिए इससे संपर्क कीजिएः

0877-2233333, 2264258

वेबसाईट: www.tirumala.org

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

श्री वेंकटेश्वर प्राणदान न्यास

हृदय, वृक्क, मस्तिष्क आदि कायांगों में जान लेवा व्याधि से पीडित निर्धन रोगियों को मुफ्त में चिकित्सा करने के लक्ष्य के साथ तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने 'श्री वेंकटेश्वर प्राण दान न्यास (ट्रस्ट)' की स्थापना की। 'श्री वेंकटेश्वर प्राणदान न्यास' के लिए स्वेच्छापूर्वक दान दीजिए।

भारत के आयकर विभाग के अनुभाग 80(G)/35, (i), (ii) के अनुसार दाता को आयकर से छूट मिलती है।

माँग ड्राफ़्ट/चेक को निम्न पते पर भेजेंः

मुख्य गणांकाधिकारी

ति.ति.दे. प्रशासनिक भवन

के.टी.रोड, तिरुपति - 517501

फ़ोन : 0877-2264249

अतिरिक्त समाचार के लिए, इनको फ़ोन करें

0877-2277777, 0877-2264258

वेबसाईट : www.tirumala.org

''तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी ग्रंथमाला''

श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का दिव्य दर्शन

हिन्दी अनुवाद

प्रो.आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी

तेलुगु मूल

प्रो.हेच.एस. ब्रह्मानंद

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2017

Hindi Translation
Prof. I. N. Chandrasekar Reddy

Telugu Original
Prof. H. S. Brahmanandham

T.T.D. Religious Publications Series No. 1269
©All Rights Reserved

First Print - 2017

Copies : 500

Published by
Sri Anil Kumar Singhal, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Office of the Publications Division
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

पुरोवाक्

''वेङ्कटाद्रिसमम् स्थानम् ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।
वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति'' ।।

अर्थात वेङ्कटाद्रि पर्वत-श्रृंखला के समान दूसरा कोई तीर्थ-क्षेत्र इस पूरे ब्रह्मांड में नहीं है। उसी प्रकार वेङ्कटेश्वर के सम-तुल्य भगवान अब तक कहीं नहीं हुए हैं। आगे भी नहीं होंगे।

कलियुग वैकुंठ के रूप में सुशोभित श्रीवेङ्कटाद्रि पर अखिलांड कोटि ब्रह्मांड नायक श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी अवतार लेकर नित्य अपने भक्तों को दिव्य दर्शन देते हुए उनके जन्म को धन्य बना रहे हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की दिव्य मंगल मर्ति के दर्शन को एक पल के लिए ही सही दर्शन करके अपने को धन्य बनाने के लिए हजारों की संख्या में नित्य प्रति, यात्री इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं।

स्मरण करने मात्र से दर्शन देनेवाले, भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करनेवाले वरदराय श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी विराजमान इस क्षेत्र में स्वामी की दिव्य मंगल मूर्ति, स्वामी की पुष्करिणी, दिव्य-पवित्र तीर्थ, स्वामी के नित्य अतिवैभव कैंकर्य, स्वामी के ब्रह्मोत्सव आदि विशेषताओं को भक्तों तक पहुँचाने के संकल्प से तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, ने ''तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी'' के नाम से एक ग्रंथ-माला आरंभ करके पंडित-विद्वानों से ग्रंथों की रचना करवाकर प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी नामक ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रो.हेच.एस. ब्रह्मानंदम् जी के द्वारा तेलुगु में 'श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी दर्शनम्' शीर्षक से

एक ग्रंथ लिखा गया है। उसी ग्रंथ का हिन्दी में 'श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का दिव्य दर्शन' नाम से, प्रो.आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी जी के द्वारा अनुवाद किया गया है। आशा करते हैं कि भक्तगण इस ग्रंथ को पढ़कर अपूर्व, अद्वितीय, अलौकिक आनंद की अनुभूति प्राप्त करेंगे।

सदा श्रीहरि की सेवा में

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

विषय - सूची

भूमिका	vii
दर्शन को 'सुदर्शन' बना लीजिए !	xi
अध्याय - 1 क्षेत्र दर्शन	1
अध्याय - 2 तीर्थ दर्शन - स्नान	14
अध्याय - 3 श्रीनिवास की अर्चामूर्ति का दर्शन	22
अध्याय - 4 उत्सव-दर्शन	40
अध्याय - 5 दर्शन की सफलता	50
अध्याय - 6 पुनर्दर्शन प्राप्तिरस्तु	62
अध्याय - 7 पुकारते ही दर्शन देनेवाले अंतर्यामी	65

❊ ❊ ❊

भूमिका

श्री श्रीनिवास के सुप्रभात का अंश मंगलशासन में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी जी के दिव्य दर्शन की एक मधुरानुभूति इस रूप में वर्णित है-

सर्वावयवसौंदर्य - संपदा सर्व चेतसाम् ।
सदा सम्मोहनायास्तु - वेङ्कटेशाय मंगलम् ।।

(अपने समस्त अवयवों के सौंदर्य से समस्त जनों को सम्मोहित करनेवाले श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का मंगल हो!)

अर्थात् श्री श्रीनिवास के दर्शन में एक 'सम्मोहन' लक्षण है, ऐसा बोध होता है। इस सम्मोहन लक्षण को ही प्रस्तुत ग्रंथ में 'श्रीनिवास ने लिखवाया' की रीति में वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा।

श्री श्रीनिवास के दर्शन कर लेने के बाद, बार-बार पीछे मुडकर फिर से एक और बार दर्शन करने की लालच से भक्तगण पीछे मुडकर देखते हैं। इसे लेकर भी मंगलशासन में इस रूप में विवरण किया गया है -

आकालतत्व मश्रांत - मात्मनामनुपश्यताम् ।
अतृप्त्यमृतरूपाय - वेङ्कटेशाय मंगलम् ।।

(काल तत्व के भर जाने तक - सतत अपने दर्शन करनेवाले प्राणियों को अतृप्त ही रखनेवाले, अमृत छवि रखनेवाले श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का मंगल हो)

युग युगों से भक्त गण स्वामी के दर्शन करते ही आ रहे हैं। आज - कल भी इसी रूप में दर्शन करते ही रहेंगे। लेकिन एक को भी 'आह!

स्वामी का दर्शन पाकर तृप्त हो गया हूँ', ऐसा नहीं लगेगा। अर्थात् कुछ और समय तक दर्शन करने की अभिलाषा कई लोग रखते हैं। कुछ और समय दर्शन करने के बावजूद और थोडी देर तक देखने की अभिलाषा निश्चित ही कोई एक दिव्य 'रहस्य' उस स्वामी की दिव्य मूर्ति में है। वह केवल एक मूर्ति मात्र नहीं है। सजीव जनजीव से भरी दिव्य शरीराकृति है। और मधुर हृदय, अपार एवं विशाल बुद्धि, चौदह भुवनों में व्याप्त हो सकनेवाली दिव्य चेतना रखनेवाले एक दिव्य पुरुषोत्तम के भव्य रूप दर्शन से पुलकित होकर, शरीर कांपते,आंखों से आँसू झर झर झरते, जन्म जन्मों के पुण्य-पापों के संग्रह को हिलाकर किसी कोने में छिपे दिव्य रूप को बाहर निकालकर एक पल के लिए दिखाकर फिर से इस माया 'जगत' रूपी ढक्कन के साथ बंद करने की एक दिव्य शक्ति आनंद निलय के विमान में सुशोभित है।

इसलिए एक विचित्र घटना घटित होती है। सोने के द्वार तक कई कामनाओं के साथ जानेवाले, स्वामी के सामने कई विनतियाँ प्रस्तुत करने की कांक्षा रखनेवाले भक्त गण, घंटों भर कतार में खडे होकर, थककर, चिढते हुए बच्चों की तरह एक के ऊपर दूसरा गिर कर स्वामी के दर्शन की तीव्र लालच रखनेवाले भी स्वामी के दिव्य मंगल रूप के दर्शन करते ही, ''ओम नमो वेङ्कटेशाय'' नामोच्चारण का श्रवण करते ही, भक्तों के कोलाहल के बीच में गोविंद नाम स्मरण करते समय भी एक ध्यानावस्था में 'जय-विजय' की मूर्तियों के पास से ही चले जाते हैं। उसके बाद स्वामी को एक पल के लिए देखना ही पर्याप्त है, पलके अपने आप बंद होकर दीपों के रूप में प्रकाशित हो जाती हैं। श्री स्वामी के दिव्याशीष को 'पलकों' में बंद करके किसी प्रकार की मनौतियों को माँगे बगैर 'अमृत' चखे देवताओं की तरह , निर्विकार चित्त से, इस

धरती के स्पर्श को भी भुलाकर लौटते हैं। इस शुभ क्षण के लिए ही कई हजारों मील पार करके भक्तगण तिरुमल पहाड पर पहुँचते हैं।

यह सब श्रीनिवास और एक भक्त के बीच में घटित होनेवाली आध्यात्मिक अनुभूति मात्र है। इस सबको अपने हृदय में ही समा रखने के कारण किसी से भी कुछ बताने का मौका नहीं रहता है। इस माया से बाहर निकलने के पहले ही हुंडी में भेंट चढाना, स्वामी के मधुर प्रसाद लेना और मंदिर से बाहर निकलना हो जाता है।

लेकिन मंदिर के अंदर जाने के पहले और बाहर आने के बाद भी श्रीनिवास के दर्शन से संबंधित एक धार्मिक संस्कार है। इस संस्कार के बारे में ही इस छोटी पुस्तिका में बताऊँगा।

युग-युगों से भक्तगण ने स्वामी की सेवा किस रूप में की है, दर्शन किए हैं, उनकी सेवाओं के कारण ही तिरुमल-तिरुपति एक 'दिव्य भूमि' के रूप में विकसित कैसे हुई है, इस क्षेत्र के समस्त देवता-रूपों में विष्णु रूपी श्री श्रीनिवास ही कैसे दर्शन देते हैं, बताना ही इस ग्रंथ का प्रयोजन है।

श्रीनिवासो विजयते

- हेच.यस.ब्रह्मानंदम्

दर्शन को 'सुदर्शन' बना लीजिए!

श्रीनिवास का दर्शन, एक वी.आई.पी से भेंट करके अपनी माँगे बताकर तत्काल प्रयोजन पाने जैसा नहीं है। स्वामी के दर्शन को 'सुदर्शन' बना लेने की रीति हमको मालूम होना चाहिए। 'सु' का मतलब अच्छा 'दर्शन' (ज्ञान) करानेवाला होना चाहिए। राक्षसों को सद्गति प्रदान करनेवाले आयुध होने के कारण ही श्रीमहाविष्णु का चक्रायुध भी 'सुदर्शन' कहा जाता है।

आज कई लोगों की चिंता है कि आज तिरुमल तिरुपति के मंदिरों के दर्शन का कार्यक्रम बच्चों के लिए एक विनोद के रूप में, युवति-युवकों के लिए एक विहार यात्रा के रूप में, धनी को अपना बडप्पन दिखाने के अस्त्र के रूप में बदल चुका है। इस चिंता के बारे में थोडा विचार करना आवश्यक है।

इस 'विहार' यात्रा का भाव कितना गलत है, इसका निरूपण करने के लिए ही इस ग्रंथ के प्रथम चार अध्याय रचे गए हैं। तिरुमल क्षेत्र कई पीढियों से गौरवपूर्ण इतिहास रखनेवाली तपोभूमि है। कई महर्षि, देवतागण, पुण्य पुरुषों ने इसे मुक्ति प्राप्त दिव्यात्माओं की बसनेवाली 'दिव्यभूमि' बतायी है। पहले अध्याय में इसकी स्थापना की गयी है। इस क्षेत्र के पवित्र होने के पीछे, सर्वपापों को दूर करके, सद्विवेक जगाकर और धर्म बोध करके मुक्ति प्रदान करनेवाले कई तीर्थ यहाँ पर विद्यमान हैं। इन तीर्थों की कथाओं का स्मरण करके इन पुण्य तीर्थो में स्नान करके पवित्र होने की सलाह दूसरा अध्याय देता है। तीसरे अध्याय में देखेंगे कि स्वामी की मूर्ति अतिलोक रमणीय दिव्य वैभव पूर्ण रूप से आनंद निलय के विमान में रहते हुए पूरी दुनिया को अपनी ओर कैसे आकर्षित

करता है। चौथे अध्याय में 'उत्सव' वैभव के बारे में विवरण दिया गया है।

यह पूरा स्वामी के दर्शन कार्यक्रम को लेकर ही है। लेकिन इस दर्शन-कार्यक्रम की सफलता कब होगी? आजकल स्वामी के दर्शन कैसे कर पा रहे हैं? कितने अनुचित मार्गों का अन्वेषण कर रहे हैं? इस रूप में स्वामी के दर्शन प्राप्त करने के बावजूद अपने पाप मिटकर क्या हम पुण्यात्मा बन जायेंगे! यही पाँचवें अध्याय का चर्चित विषय है।

असल में हम तीर्थ-यात्राएँ क्यों करते हैं? तीर्थों में क्यों स्नान करते हैं? इसके बारे में सोचना आजकल छोड ही दिया है। इसीलिए पहले के दो अध्यायों में पुण्य क्षेत्र दर्शन से धार्मिक ज्ञान प्राप्त होगा तथा तीर्थों में स्नान करने से पाप मिट जायेगा, ऐसी पौराणिक उक्तियों के द्वारा विवरण दिया जायेगा।

श्री श्रीनिवास के दर्शन करने से पहले, दर्शन करते समय, दर्शन करने के बाद क्या-क्या काम करना चाहिए, क्या-क्या नहीं करना चाहिए, अन्न-विहारादि नियम क्या हैं? उनका महत्व क्या है? सहचर भक्तों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए? अर्चक, देवस्थानम् के कर्मचारी, सेवकों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए? इस प्रकार के विधि-निषेध संबंधी नियमों के बारे में अंतिम अध्याय में चर्चा की जाएगी। ये सभी विषय 6, 7 अध्यायों में प्रस्तुत हैं।

अब श्री श्रीनिवास के दर्शन के दो भाग हैं - मूल मूर्ति दर्शन, दूसरा उत्सवों में श्रीनिवास की दिव्यानुभूति। इन्हें प्राप्त करने के लिए भक्त को समस्याओं से मुक्त होना चाहिए। ऐसी शांति केवल धार्मिकता के कारण

ही आयेगी। पाप कार्यों से दूर रहने से ही धार्मिकता की सिद्धि होगी। इस ग्रंथ में यह पायेंगे कि मंदिर में अनुसरण किए जानेवाले ये शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक धार्मिक-नियमों के बारे में प्रस्तुत ग्रंथ में जगह जगह पर विवरण दिया गया है।

श्री श्रीनिवास का दर्शन प्रशांतता देनेवाले होना चाहिए। अप्रशांत मन से स्वामी का दर्शन करने पर वह यांत्रिक 'मनौती पूर्ति' के रूप में सीमित प्रयोजन ही देगा। ऐसा न होकर श्री श्रीनिवास के दर्शनों को अनंत प्रयोजनकारी के रूप में बना लेना चाहिए।

पुण्य क्षेत्रों की यात्रा करने से मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन आना चाहिए। रजस्तमोगुण दूर होकर सत्व गुण की वृद्धि होनी चाहिए। मैं ने कथावाचकों से इससे संबंधित एक कहानी तुकाराम की सुनी है। वह कहानी सुनाऊँगा -

एक बार तुकाराम के बंधु और मित्र मिलकर आस-पडोस के पुण्यतीर्थ और क्षेत्रों की यात्रा के लिए निकले। उन्होंने सोचा कि अपने साथ तुकाराम को ले जायेंगे तो समय अच्छे ढंग से कट जाएगा, साथ ही चार अच्छी बातें भी उनके मुँह से सुनने को मिलेगा। उन्हें तुकाराम के बारे में ठीक से मालूम नहीं था।

तुकाराम ने उनसे कहा - ''मुझे संकीर्तन गाते ही समय निकल जाता है। पांडुरंग ही सदा मेरे साथ ही खेलते रहते हैं। फिर भी मैं आप लोगों को यात्रा में जाने से नहीं रोकूँगा। मेरी जगह अपने एक प्रतिनिधि को आपके साथ भेजूँगा। ले जाइए।'' कहते हुए अपने घर के पिछवाडे में लगे एक कडुवी ककडी को काटकर उन्हें दिया।

भक्तों की समझ में नहीं आया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। तुकाराम के आदेश के अनुसार सभी तीर्थों में डुबकी लगाते समय उस ककडी को भी डुबोकर बाद में कपडे के साथ अच्छे ढंग से सुखाकर बडी सावधानी के साथ उसे वापस ले आकर उस महाभक्त को लौटा दिया।

तुकाराम ने उन्हें बहुत धन्यवाद देते हुए उन्हें बैठने के लिए कहा। रसोई से एक चाकू मंगाकर ककडी को छोटे छोटे टुकडों में काटकर प्रसाद के रूप में उन सभी भक्तों में खाने के लिए बाँटा। खाने से क्या हुआ? वह ककडी का टुकडा बहुत कडुवा था। सबके चेहरे विकृत हो गए।

उनकी हालत को समझते हुए तुकाराम ने कहा '' क्या? अभी कडुवाहट दूर नहीं हुई? मैं जानता हूँ कि वह कडुवा है। मैं ने समझा कि तीर्थों में डुबकी लगाने से उसकी कडुवाहट दूर होकर मीठा बन जाएगा। बुरा हुआ! क्या अब भी कडुवाहट दूर नहीं हुई? '' चमत्कारपूर्ण ढंग से कहते हुए पांडुरंग, गीत गाते हुए वे वहाँ से निकल गए।

इस कहानी के द्वारा बताया गया रहस्य यह है कि तीर्थ यात्राओं से मनुष्यों के अंदर दुर्गुण दूर हो जाना चाहिए, सद्गुणों की प्राप्ति होनी चाहिए। तुकाराम को ककडे के टुकडे के न बदलने से बुरा नहीं लगा। बल्कि तीर्थ यात्रा करके लौटने के बाद भी अहंकार, मोह, काम, क्रोधादि से मुक्त नहीं हुए भक्तों की चिंता से बुरा लगा था।

कई तकलीफें उठाकर हजारों भक्त हर दिन मंदिर आते हैं। उनमें किन की भक्ति बडी है, किन की नहीं है, इसके बारे में कुछ भी भूल से भी नहीं कह सकते हैं।

ये 'यथा मां प्रपद्यंते तामस्तथैव भजाम्यहम्' - गीताकार के इस प्रबोध को स्मरण रखना चाहिए। (जो कोई जिस रूप में मेरी शरण में आते हैं उन्हें उस रूप में मैं अनुग्रह करता हूँ।) 'ज्ञान' की इच्छा से, 'मुक्ति' की इच्छा से स्वामी का दर्शन कीजिए। तब वह 'सुदर्शन' बन जाएगा। उन्नत पद की कामना करने पर जीवन अवश्य सुगम बन जाएगा। यानी धन-संपदा, सत्संतान, स्वास्थ्य, विराग सब की प्राप्ति होगी। इसीलिए आपके दर्शन को सुदर्शन के रूप में बदल लेना चाहिए।

अध्याय - 1
क्षेत्र दर्शन

'तिरुमल' अत्यंत प्राचीन पौराणिक प्रसिद्धि-प्राप्त पुण्य क्षेत्र है। श्री महाविष्णु श्रीराम, श्रीकृष्ण अवतारों के अनंतर कलियुग के आरंभ में अवतरित रूप ही श्री श्रीनिवास स्वामी है । उस स्वामी का अर्चारूप ही श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी है ।

'आदि वराह क्षेत्र' इसका दूसरा नाम है। पुरातत्व शास्त्रज्ञों के अनुसार इसकी प्राचीनता 200 करोड वर्ष से अधिक है। वैदिक काल से ही भक्त इसे परम पवित्र, ऐश्वर्य प्रदायी, दिव्य क्षेत्र के रूप में देखते आये हैं। तब से ही यह परम वैष्णव क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ है।

'विष्णुः पर्वतानामधिपतिः'

यह 'श्रुति' वचन है। इसलिए विष्णु मंदिर सभी बहुत कुछ पर्वत श्रेणियों में ही पाते हैं। इससे बढकर ऋग्वेद में इस प्रदेश को 'श्रीपीठ' कहकर पुकारा गया है।

अराइकाणे विकटे गिरिम् गच्छ सदान्वे
शिरिम्बिठस्य सत्त्वभिस्त्वेभिष्ट्वाचातयामसि
(ऋग्वेद 10-15-1)

हे भक्त ! अगर तुम धर्मार्थ काम मोक्षादि पुरुषार्थ चाहनेवाले हो तो, निर्धन होते हुए भी, बाह्यांतर दृष्टिहीन अज्ञानी होने पर भी, (नेत्रहीन होने पर भी), कामनाओं से कुंठित होने पर भी, पाप के परिहार के लिए, ऐश्वर्य-श्रेय मार्गों की प्राप्ति के लिए, श्री श्रीनिवास जहाँ विराजमान

हैं, उस श्रीपर्वत पर जाकर वहाँ के स्वामी की सेवा करनेवाले 'तदीय' भक्तों के साथ मिलकर श्री श्रीनिवास की प्रार्थना करो)

सच है। वेदों के इंद्र-उपेंद्र के संवाद भाग को पढने से, श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम् के भृगु महर्षि के वृत्तांत को पढने से, श्रीमहाविष्णु लक्ष्मी माता की खोज करते भूलोक पहुँचकर, अपने अभीष्ट से इस क्षेत्र में लक्ष्मी के साथ रहने लगे हैं। इसीलिए उनका नाम श्री श्रीनिवास पडा है। श्री जिस के लिए निवास है वह ही श्रीनिवास है। जिसमें 'श्री' होती है वही श्रीनिवास है। इसीलिए वेद ने इसे 'श्रीपीठ' कहा है। श्री - तिरु, पर्वत - मल, श्रीपर्वत, श्रीशैल आदि नाम भी इस पर्वतश्रृंखला के ही हैं। तिरुमल का अर्थ यही है। यह नवनिधियों के अधिपति कुबेर को लक्ष्मी प्राप्त होनेवाला श्रीनिवास का बसा हुआ प्रदेश है। इसलिए सभी रूपों में यह ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले दिव्य क्षेत्र के रूप में लोकप्रिय हुआ है।

वह कृत युग में घटित कथा है। वराह स्वामी के रूप में श्रीमहा विष्णु ने पृथ्वी को सागर में डूबने से बचाया। पुराण यह स्पष्ट कर रहे हैं कि तब से वराह स्वामी इस तिरुमल पर्वत पर ही रमा के साथ विहार करते सुखी जीवन बिता रहे हैं।

मायावी परमानंदम्
त्यक्त्वा वैकुंठमुत्तमम्
स्वामिपुष्करिणीतीरे
रमया सह मोदते (ब्रह्मांड पुराण)

अर्थात् 'मायावी' समझेजानेवाले श्रीमहाविष्णु आनंदप्रद वैकुंठ को छोडकर स्वामी की पुष्करिणी के तट पर रमा देवी के साथ बहुत सुखी-क्रीडा कर रहे हैं।

श्रीवराहस्वामी अब भी पुष्करिणी के वायव्य भाग में लक्ष्मी समेत विराजमान हैं। इन्हीं के पास श्री श्रीनिवास ने 100 कदम भूमि की याचना करके मंदिर बनवाकर बसने की बात कही है। पुराण यह भी स्पष्ट करते हैं कि भक्तों के द्वारा समर्पित होनेवाली भेंटों में हिस्सा देने का समझौता भी वराह स्वामी के साथ हुआ है।

साधारण मनुष्य के रूप में श्री महाविष्णु के द्वारा खेला गया यह 'माया' नाटक कलियुग के आरंभ में संपन्न हुआ। उस समय श्रीनिवास ने वराह स्वामी को दो वरदान दिए ।

1. प्रथम दर्शन वराह स्वामी का ही होगा। यानी श्री श्रीनिवास के दर्शन से पहले भक्त पहले पुष्करिणी में स्नान करके वराह स्वामी का दर्शन करके बाद में आनंदनिलय के श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का दर्शन करेंगे। यह पहला वरदान है।

2. प्रथम नैवेद्य भी श्रीवराहा स्वामी को ही दिया जाएगा। उसके बाद ही श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी को समर्पित किया जाएगा। - यह दूसरा वरदान है।

एक और विषय के बारे में बुजुर्ग लोग कहते हैं, यथा -

वराह स्वामी को 'गोविंद' नामक दूसरा नाम भी है। विष्णुसहस्रनाम में कहा गया है - 'महावराहो गोविंदः'। श्रीनिवास ने आदेश दिया - गो - भूमि को, विंद - पानेवाला। इसी नाम से कलियुग में भक्त मुझे मेरा संबोधन करेंगे।

तिरुमल क्षेत्र पहुँचते ही श्रीवराह स्वामी की पौराणिक कथा स्मरण आना ही यहाँ के श्रीनिवास दर्शन के नेपथ्य का पौराणिक स्मृति-रहस्य

है। इसीलिए तिरुमल पर पैर रखते ही भूलोक परिधि से मनुष्य ऊपर उठने का अनुभव करता है। यह युग युगों से भक्तों की दर्शन करने के बाद, अनुभव से प्राप्त दिव्यानुभूति है। इसीलिए पौराणिक काल से ही भक्तगण इसका अनुभव करते आये हैं और ब्रह्मांड पुराण में कहा भी गया है कि वेङ्कटाद्रि जैसे क्षेत्र और श्रीनिवास जैसे देवता दूसरा कोई नहीं है -

''वेङ्कटाद्रिसमम् स्थानम् ब्रह्मांडे नास्ति किञ्चन
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति''

पूरे ब्रह्मांड में ढूंढने पर भी वेङ्कटाद्रि जैसा क्षेत्र और वेङ्कटेश्वर जैसा भगवान इससे पहले नहीं हुए, आनेवाले युगों में भी नहीं होंगे।

श्रीकृष्णावतार, द्वापर युग में संपन्न हुआ था। श्रीकृष्ण के निर्याण के बाद ही कलियुग प्रारंभ हुआ है। श्रीनिवास ने अपने बारे में बताते हुए पद्मावती देवी से इस रूप में कहाः

सिंधु पुत्रकुलम प्राहुःअस्माकम् तु पुरा विदुः
जनको वसुदेवस्तु जननी देवकी मम
अग्रजश्श्वेतकेतुस्तु सुभद्रा भगिनी मम
पार्थोऽपि मे सखा देवि पांडवा मम बांधवाः

पुराण जाननेवाले मेरे वंश को सिंधुपुत्र कुल (चंद्रवंश) समझते हैं। मेरा जनक वसुदेव हैं और जननी देवकी। बलराम मेरे बडे भाई हैं। सुभद्रा मेरी बहन है। अर्जुन मेरा सखा है। पांडव मेरे बंधु हैं।

सप्त गिरियों में 'अंजनाद्रि' नामक एक पहाड है। एक पौराणिक कहानी है कि यहीं हनुमान पैदा हुए तथा, श्रीराम के वनवास काल में

श्रीराम यहाँ पर आये। उसके स्मरण में, श्रीनिवास के सुप्रभात में श्रीराम का उल्लेख प्रारंभ में ही दिखाई पडता है -

कौसल्या सुप्रजा राम - पूर्वा संध्या प्रवर्तते
उत्तिष्ठ नरशार्दूल - कर्तव्यम् दैवमाह्निकम्।।

कौसल्या की सत्संतान हे श्रीराम ! पूरब में सूर्योदय हो रहा है। देवपूजादि कार्य को संपन्न करना है। हे पुरुषोत्तम ! नींद से जागो!

शायद इसके प्रमाण के रूप में श्रीनिवास के मंदिर के प्रथम प्रांगण को (सोने के द्वार के अंदर) श्रीराम का भवन (जय विजय के पीछे का भाग) कहा जाता है। बनजारा भक्त (हथीराम संप्रदाय वाले) श्रीनिवास को 'श्रीराम बालाजी' ही पुकारते हैं।

इस रूप में श्रीराम और श्रीकृष्ण अवतार की कहानियों की स्मृति तिरुमल क्षेत्र के दर्शन को एक दिव्यस्पर्श प्रदान करती है। तिरुमल पर स्थित प्रत्येक शिला, वृक्ष, पहाड, गुफा, तीर्थ, कीडे-मकोडे, पशु-पक्षी आदि सब श्री श्रीनिवास के रूप हैं। श्रीनिवास के भक्तों के रूप ही हैं। इसीलिए भगवान रामानुज (11 वीं सदी) इस पहाड पर घुटनों के बल पर चढकर आये थे। पैर के लगने से पाप होगा, ऐसा समझकर भगवान रामानुज ने ऐसा किया। तो यह क्षेत्र कितना पवित्र है, कितना पौराणिक है, कितना दिव्य है, समझ सकते हैं।

तिरुमल श्री श्रीनिवास का दर्शन 'अलिपिरि' से प्रारंभ होता है। 'पादाल (श्रीनिवास के चरण) मंडप' के पास शिला पर सिर लगाकर, पहाड की सीढियों पर चढते हुए 'हवाई गोपुर' तक पहुँचते-पहुँचते शरीर के सभी मलिन नष्ट हो जाते हैं। शरीर की सभी धातु पवित्र बन जाती

हैं। 'मोकाल्ल मेट्लु' (घुटनों के बल पर ही चढ सकनेवाली सीढियाँ - श्री श्रीनिवास के तिरुमल पर पहुँचने के पहलेवाली सीढियाँ) चढते ही मनुष्य के काम-क्रोधादि सभी गुण नष्ट होकर सात्विक प्रवृत्ति विकसित होती है। इस रूप में तिरुमल पहाड पर पैर रखते ही 'जीव' जागृत होता है। उस जीव को, पापों से मुक्त होने के लिए अत्यंत कठिन साधना ही सीढियों के मार्ग से 'ऊर्ध्व गति' (मुक्ति) की माँग करते हुए पहाड पर चढना। योग मार्ग का यह रहस्य पर्वतारोहण क्रम में सूक्ष्म रूप से छिपा हुआ है।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने, एक महान संकीर्तनाचार्य (ई. 15 वीं सदी) को तिरुमल पहाड ने किस रूप में दर्शन दिया, एक संकीर्तन में बहुत सुंदर ढंग से उन्होंने ऐसा वर्णन किया है -

पल्लवि : अदिवो अल्लदिवो हरिवासमु
पदिवेल शेषुल पडगलमयमु ।। अदिवो ।।

चरण : अदे वेङ्कटाचल मखिलोन्नतमु
अदिवो ब्रह्मादुल कपुरूपमु
अदिवो नित्यनिवास मखिलमुनुलकु
अदेचूडु डदेम्रोक्कु डानंदमयमु ।। अदिवो ।।

चेंगट नल्लदिवो - शेषाचलमु
निंगिनुन्न देवतल निजवासमु
मुंगिट नल्लदिवो - मूलनुन्न धनमु
बंगारु शिखराल - बहुब्रह्ममयमु ।। अदिवो ।।

कैवल्यपदमु वे - ङ्कट नगमदिवो
श्रीवेङ्कटपतिकि - सिरुलैनदि

भाविंप सकल सं - पद रूप मदिवो
पावनमुलकेल्ल - पावनमयमु ।। अदिवो ।।

(अर्थात् देखो वही वेङ्कटाद्रि श्रीहरि का निवास है। दस सहस्र फ़णों के नागों का विलास है। यह पर्वत पूरे जगत में अत्यंत उन्नत एवं विलक्षण है। ब्रह्मादियों एवं मुनियों का नित्य निवास है। देखो और करो नमन इस पहाड को। यह शेषाद्रि गगन तल में देवों का निवास है। यह स्वर्णमय शिखरों से बना है तथा ब्रह्ममय है। यह देवताओं के आंगन का मूल धन है। यह शेषाद्रि, कैवल्य प्रदाता है। सकल विभव और श्रीवेङ्कटेश की श्रीनिधि भी यह पहाड है। यह शेषाद्रि पावन से पावनमय है।)

स्कंद पुराण में इस पहाड को 'सुवर्णशैल' (सोने का पहाड) के रूप में वर्णन किया गया है। शेषशैल नामक इस पर्वत श्रेणी का भाग लेटे हुए साँप की तरह दिखाई पडता है। इस पहाड का रंग सामान्य काला रंग नहीं है। यह सूर्य कांति में वृक्षों की हरियाली के बीचों बीच पिघलकर ढ़ले हुए सोने के पिंड के रूप में शोभित है। देवता, मुनि, सिद्ध, किन्नर, किंपुरुषादि के द्वारा विहार करनेवाली दिव्य भूमि है। यहाँ रात के समय ब्रह्मादि देवता पधारकर स्वामी की सेवा करके जाते हैं, ऐसा पुराणों का कथन है। यहाँ सोने का मतलब सकल सुंदर रूपवाला सोना न होकर, योग-सिद्धि का सोना (इसी को हेमतारक विद्या के रूप में वेमनादि महायोगियों ने कहा है) माना जाता है। मोह लक्ष्मी भी एक प्रकार का सोना मानी जाती है। यही बहु ब्रह्ममय सुवर्ण शिखरों से शोभित शेषाद्रि ज्ञान संपदा है।

इसी प्रकार एक और संकीर्तन में कवि अन्नमाचार्य ने इसे 'भूलोक वैकुंठ' ही कहकर मनभर वर्णन प्रस्तुत किया है -

पल्लवि : कट्टेदुर वैकुंठमु - काणाचइन कोंड
तेट्टेलाये महिमले - तिरुमल कोंड ।। कट्टे ।।

चरण : वेदमुले शिललै - वेलसिनदी कोंड
एदेस पुण्यराशुले - एरुलैनदी कोंड
गादिलि ब्रह्मादिलो - कमुलकोनल कोंड
श्रीदेवुडुंटेटि - शेषाद्रि ई कोंड ।। कट्टे ।।

सर्वदेवतलु मृग - जातुलै संचरिंचे कोंड
निर्वहिंचि जलधुले - निट्टचरुलैन कोंड
उर्वितपसुले तरुवुलै - निलिचिन कोंड
पूर्वपुटंजनाद्रि ई - पोडवाटि कोंड ।। कट्टे ।।

वरमुलु कोटारुलै - वक्कणिंचि पेंचे कोंड
परगु लक्ष्मीकांतु सो - बनपु कोंड
कुरिसि संपदलेल्ल - गुहल निंडिन कोंड
सिरुलैन दिदिवो - श्री वेङ्कटपु कोंड ।। कट्टे ।।

(अर्थात् यह तिरुमल पहाड अनेक महिमाओं से भरा है और नेत्र पर्व प्रदान करनेवाला साक्षात् वैकुंठ समान है। यह पहाड साक्षात् परमात्मा का वासस्थान है। यहाँ वेद ही शिलाएँ बने हैं, पुण्य यहाँ राशियों के रूप में बहते हैं। सर्व देवता इस पहाड पर मृग बनकर संचरण करते हैं। सर्वलोक के पुण्यात्मा यहाँ तप करने आते हैं। महात्मा, महानुभाव यहाँ वृक्ष बनकर रहना पसंद करते हैं। सबकी कामनाओं की पूर्ति करते हुए सबको वरदान देनेवाला पहाड भी यही है। लक्ष्मीकांत के बसने के

साथ-साथ सर्वजनों को सारी संपदाएँ देनेवाला पहाड भी यही है। इसे ही वेंकटाद्रि पहाड कहते हैं।)

'नेत्रों के सामने दिखाई पडनेवाला वैकुंठ ही यह तिरुमल पहाड है' - ऐसा अन्नमय्या ने अपने संकीर्तन में गाया है। इसे एक श्रीनिधि के रूप में, कदम-कदम पर महिमाओं से भरे दिव्य क्षेत्र के रूप में, अपूर्व वर्णन किया है। यहाँ दिखाई पडनेवाली शिलाएँ ही वेद हैं। नदी-नाले पुण्य प्रवाह हैं। सत्य लोक के बाद स्थित वैकुंठ यही है। देवतागण यहाँ मृगों के रूप में संचरण करते हैं। सागर जल घनीभूत होकर यहाँ पहाड बन गए। कई महर्षि यहाँ महावृक्ष बनकर अवतरित हुए हैं। वरदान बरसानेवाली कलिहान यह है। कितना भी वरदान माँगो यह देती है। वृद्धि प्रदान करेगी। श्री श्रीनिवास की क्रीडाओं का स्थल यह है। इन पहाडी गुफाओं में अनंत संपदा है। वे कह रहे हैं कि यही वेंकटाद्रि की महिमा है।

अन्नमय्या की एक भी बात में अतिशयोक्ति नहीं है। अनंताल्वान महात्मा की गाथा से यह रहस्य खोला गया है। एक बार वे दक्षिण देश की यात्रा के लिए तिरुमल से निकले। उनकी श्रीमती ने उन्हें रास्ते में खाने के लिए मीठे चावल तैयार करके दिए। उन्होंने उस मीठे चावल की पोटली को तिरुपति के एक कुएँ के पास खोला। खोलने पर उसमें चींटियाँ दिखाई पडी। तुरंत अनंताल्वान उन चींटियों को नमस्कार करके - ''आह ! कितना बडा पाप किया। कौन तपस्वी इन चींटियों के रूप में तिरुमल पहाड में थे। उन्हें स्वामी से अलग करके वियोग का शिकार किया'', ऐसा चिंता करते हुए - पुनः पहाड पर पहुँचकर - पहाड पर उस पोटली को खोलकर स्वामी के साथ उन चींटियों को मिलाकर आनंद का अनुभव किया था। इस रूप में यह क्षेत्र अत्यंत 'पुण्यशील' क्षेत्र के रूप में स्थापित हो गया।

इन सबसे अलग एक और भक्त ने स्वामी से एक विचित्र वरदान माँगा है - वे महानुभाव हैं कुलशेखर अल्वार। (ई. 8 वीं सदी)

''हे स्वामी ! वेङ्कटाचलपति! आपके सामने शिला की देहली बन कर रह जाने से नित्य आपके मुखारविंद का दर्शन कर पाऊँगा न !'' ऐसी प्रार्थना करके वे स्वामी के गर्भालय के सामने 'गडप' (देहली) के रूप में परिणत हो गए और आज भी दर्शन दे रहे हैं। इसीलिए गर्भालय की देहली को 'कुलशेखरप्पडी' नाम से पुकारा जाता है।

ऐसे भक्तों की कहानियों के संदर्भ, इस क्षेत्र पर अपार हैं। इसीलिए तिरुमल क्षेत्र का 'भूलोक वैकुंठ' नाम सार्थक बन पड़ा है। श्रीनिवास के दर्शन के पहले हमें आकर्षित करनेवाले दिव्य धाम तिरुमल पहाड की इतनी पौराणिक प्रशस्ति है। यही स्वामी का स्थान बल है। श्री श्रीनिवास के दर्शन में क्षेत्र दर्शन ही प्रथम अवस्था है। यह क्षेत्र ही स्वामीजी की प्राकृतिक विभूति है। प्रकृति उनका एक रूपांतर ही है।

इसी रूप में श्रीनिवास के कल्याण के लिए प्रत्यक्ष गवाह के रूप में खडा इमली का वृक्ष, स्वामी के कल्याण के लिए पकवान बनानेवाली आकाश गंगा, पापविनाशादि तीर्थ, स्वामी की दाढी पर अनंताल्वान के द्वारा फेंकी गई कुल्हाडी, स्वामी पर कुल्हाडी फेंककर मरनेवाले 'गोल्ल' (सन्निधि ग्वाल) - सभी भक्तों की देखभाल करना इस क्षेत्र की एक और विशेषता है।

सुप्रभात, कल्याणोत्सव, शयन सेवाओं में अपने पूर्वजों के संकीर्तन गाते हुए, लडकीवालों के सभी संस्कार-संप्रदायों की पूर्ति करनेवाले ताल्लपाक वंशज, एकांत सेवा के समय स्वामी को दी जानेवाली 'मुत्याल आरती' (मोतियों की आरती) देनेवाले तरिगोंड वेंगमांबा के वंशज आदि

कई पीढियों से तिरुमल में ही अपना वास बनाकर आज तक भी श्री श्रीनिवास की सेवा करते अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं।

आज भी देखा जा सकता है कि गोपीनाथ के द्वारा पता नहीं कब शुरु किया गया, लेकिन वैखानस आगम पूजा पद्धति आज भी वैसे ही चलाना, अनंताल्वान संतति के लोगों से श्रीमद्रामानुजचार्य जी के द्वारा प्रारंभ की गयी 'जियंगार' कैंकर्य व्यवस्था आज भी बिना किसी परिवर्तन के चालू हैं। श्रीमहाविष्णु को वेदसंरक्षक के रूप में नाम है। इसीलिए चतुर्वेद पारायण और पुराण प्रवचन यहाँ नित्य-निरंतर होते हैं। ये सब तिरुमल की गिरियों में श्रीमहाविष्णु की महिमाओं का गायन करते इस क्षेत्र को अत्यंत पुनीत बनाते रहते हैं।

इस रूप में श्री श्रीनिवास का 'दर्शन' भक्तों को नवविधि भक्ति मार्गों में बताये गए प्रथम मार्ग वेदनाद 'श्रवण' से प्रारंभ होकर, श्रीनिवास की गोविंद माला 'संकीर्तन', सदा गोविंद का 'स्मरण' आदि भक्तों के हृदयों में भगवान के अस्तित्व को घंटा नाद के रूप में घोषित करते रहते हैं। इस रूप में भक्त थोडी देर के लिए ही सही, भवबंधनों से मुक्त होकर श्रीनिवास की सन्निधि में आध्यात्मिक शांति को प्राप्त करता है।

अन्य प्रदेशों के पाप, पुण्य क्षेत्र में, तीर्थों में मिट जाते हैं, इसलिए पुण्य क्षेत्रों का पर्यटन, नियमबद्ध निवास-पद्धति, जप-तप योग-साधना, अल्पाहार और विहार नियमादि सात्विक जीवन मार्ग की शिक्षा देते थे। इनसे शारीरिक और मानसिक अंतःशुद्धि प्राप्त होंगे।

इसलिए इस क्षेत्र को स्वामी के भौतीक प्रतीक के रूप में मान सकते हैं। सात पहाड क्रम से इसमें मुख्य रूप से हैं। इन्हीं को सात पहाड

या सप्त गिरि कहते हैं। यहाँ के स्वामी के सर्वप्रिय संबोधन इसलिए 'एडुकोंडलवाडा वेंकटरमण गोविंदा' (सात पहाडोंवाले वेङ्कटरमण गोविंद) है।

सप्तगिरीश का मतलब है इन सात पहाडों में लीला करते हुए 'तिरुमल नायक' के रूप में स्थिर रहनेवाला स्वामी -

श्री शेषशैल गरुडचल वेङ्कटाद्रि
नारायणाद्रि वृषभाद्रि वृषाद्रिमुख्याम्
आख्याम त्वदीयवसते रनिशम वदंति
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्

हे स्वामी ! आप के निवास स्थान इस तिरुमल पहाड को शेषाद्रि, गरुडाद्रि, वेङ्कटाद्रि, नारायणाद्रि, वृषभाद्रि, वृषाद्रि (अंजनाद्रि) आदि नामों से पुकारते हैं। आप को सुप्रभात हो!

वृष शब्द का अर्थ 'धर्म' है। यहाँ के 'धर्मगिरि' पर ही वेद पाठशाला है। नारायणाद्रि - नारायण गिरि - स्वामी लीला विलास का स्थान है। शेषाद्रि पुराण प्रसिद्ध स्थान है। अंजनाद्रि हनुमान के जन्म का स्मरण दिलाती है। इस रूप में स्वामी के अनंत लीला वैभव इन पहाडों पर चढते समय स्मरण करेंगे तो निरंतर स्वामी अपना दर्शन भक्तों की मनोभूमि पर देते रहते हैं।

बुजुर्ग लोगों का कहना है कि क्षेत्र का मतलब स्थान है। तिरुमल एक क्षेत्र है। लेकिन उसमें कई तीर्थ (नदी-नाले, तालाब) हैं। इनका दर्शन करके तप करने के लिए युग युगों से ऋषि, देवतागण आते थे, उसी रूप में मनुष्यों का आना प्रारंभ हो गया, इसीलिए पुण्य क्षेत्रों में जाने का नाम 'तीर्थयात्रा' पडा है।

व्यास महर्षि ने 'तीर्थाभिगमन' को सवोत्तम कर्म घोषित किया है।

ऋषीणाम् परमम् गुह्यमिदम् भरतसत्तम्!
तीर्थाभिगमनम् पुण्यम् यज्ञैरपि विशिष्यते!

हे भरत श्रेष्ठ ! यह ऋषियों के लिए भी परमगोप्य बात है। तीर्थयात्रा महापवित्र सत्कर्म होता है। यह यज्ञों से भी बढकर है।

अध्याय - 2
तीर्थ दर्शन - स्नान

तिरुमल क्षेत्र से संबद्ध स्थल पुराण का ग्रंथ 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम' है। उसी रूप में श्री श्रीनिवास तत्व का विवरण देनेवाला ग्रंथ 'श्रीवेङ्कटाचल इतिहास माला' है। इन दोनों ग्रंथों में मुख्य रूप से प्रतिपादित विषय तिरुमल के पुण्यतीर्थ ही हैं। 66 करोड पुण्य तीर्थों का क्षेत्र है यह तिरुमल क्षेत्र। पुराणों के अनुसार इसमें कई सौ तीर्थ हैं। कई तीर्थों का नाम अब लोगों को मालूम भी नहीं है। जो नाम जानते हैं वे हैं - आकाश गंगा, गोगर्भम, जापाली तीर्थ, तुंबुरु तीर्थ, पापविनाशनम, कुमारधारा। इन तीर्थों की कहानियाँ पढते समय मनुष्य की समझ में आता है कि तीर्थ यात्रा मनुष्य में 'धर्म' स्मृति को जगाती है। इन सभी तीर्थों का जल नित्य संगम होनेवाला स्थल ही 'पुष्करिणी' है। स्वामी के मंदिर की ईशान दिशा में स्थित यह तीर्थ अत्यंत पवित्र तीर्थ है। शास्त्र वचन के अनुसार नदियों में पुष्करों के समय यानी हर 12 सालों में एक बार ही नदियों का जल संगम करता है। लेकिन स्थल पुराण यह स्पष्ट कर रहा है कि स्वामी की पुष्करिणी में प्रत्येक पल सर्वनदियों का जल संगम करता है। इतिहास यह स्पष्ट करता है कि श्रेष्ठ होने के कारण ही यह स्वामी की पुष्करिणी बनी है। स्वामी का क्रीडा-स्थल शेषाद्रि है तो जलक्रीडा करनेवाला पुण्य तीर्थ यह पुष्करिणी है। क्षेत्र महिमा स्पष्ट करती है कि इन दोनों को, वैकुंठ से गुरुड श्रीमहाविष्णु के लिए ले आये। इसीलिए किंवदंतियाँ है कि अनेक आर्ती, रोगी, तापसी, मुनिगण, देवतागण ने इस पुष्करिणी में स्नान करके अपने पाप को मिटाकर स्वामी के कटाक्ष को प्राप्त किया है।

इस मंदिर का मूल रूप लगभग 5000 वर्ष पुराना है। एक कथा के अनुसार तब की 'विरजा' नदी की एक धारा जहाँ प्रवाहमान थी, उस नदी के तट पर पद्मपीठ पर स्वामी का उद्भव हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि नदी जलों के मध्य में ही स्वामी का उद्भव स्थल है। श्रवणा नक्षत्र, स्वामी का जन्म नक्षत्र है। यह मकर राशी से संबंध रखता है। मकर को जल में अत्यंत बल होता है। धन, जल का रूप ही है। इसीलिए जोतिषी बताते हैं कि स्वामी धनाकर्षण अधिक करते हुए अपने नदी-तट स्थित निवास के माहात्म्य को प्रकट कर रहे हैं।

तिरुमल नंबी के समय से ही आकाश गंगा के पानी से ही स्वामी का अभिषेक करना संप्रदाय बना हुआ है। आज भी शुक्रवाराभिषेक के लिए पुरोहित मटकियों से आकाश गंगा का जल ले आते हैं। इसको लेकर भी स्वामी के सुप्रभात में उल्लेख है।

अखिलांडकोटि ब्रह्मांड नायक के रूप में रात के समय अदृश्य रूपधारी सकल देवतागण स्वामी की अर्चना करते हैं। माना जाता है कि अत्री आदि सप्त महर्षि आकाश गंगा के कमलों से स्वामी के चरण कमलों की पूजा करते हैं।

जापाली तीर्थ - एक और मुख्य तीर्थ स्नान है। स्थल पुराण के अनुसार, हनुमान की माता अंजनादेवी का आश्रम ही साबाली (जापाली) तीर्थ बन गया है। यहाँ पहुँचकर श्रीराम ने वानर सेना से मिलकर इस पुष्करिणी में स्नान किया। तभी से ही उन्हें स्वामित्व प्राप्त हुआ। विश्वास है कि उसके बाद ही रावण वध और राज्य-तिलक हुई है। इसलिए यह एक त्रेता युग की कथा का स्मरण दिलाता है। इससे बढकर माना जाता है कि अब जहाँ श्रीनिवास का मंदिर है, वहाँ पहले हनुमान ने श्रीराम

के लिए कुटीर बनाया था। उस कुटीर में आराम करने के बाद ही दक्षिण दिशा में यात्रा करके उन्होंने रावण से युद्ध आरंभ किया था।

एक और पुण्य तीर्थ 'वैकुंठ तीर्थ' है। विश्वास किया जाता है कि यहाँ की एक गुफा में कुछ वानर प्रमुखों ने अंदर प्रवेश करके अंदर श्रीमन्नारायण के दर्शन किए। 'वराह पुराण' की एक कथा के अनुसार कालांतर में वह गुफा अदृश्य हो गया।

ऐसा ही एक और पवित्र तीर्थ 'तुंबुरु' तीर्थ है। इतिहास के अनुसार यहाँ पर तरिगोंड वेंगमांबा ने सुदीर्घ काल तक तप किया था। असल में इस तीर्थ का प्राचीन नाम 'घोण' तीर्थ था। तुंबुरु एक गंधर्व था। उन्होंने बर्ही नामक एक राजा के दान गुण से प्रभावित होकर 'तुम वीर शूर दान शिखामणी' कहकर उनकी असीम प्रशंसा की थी। इसके फलस्वरूप उन्होंने बर्ही महाराज के पास स्थित रत्नखचित वीणा को भेंट के रूप में प्राप्त किया था।

वीणा समेत तुंबुरु, नारद जी के पास आये। नारदजी को गुस्सा आया। नारद जी ने ''आह! हम सबको भगवान की प्रशंसा करनी चाहिए। अपने मुँह से मनुष्य की प्रशंसा करके तुम ने पाप किया है। इसलिए तुम भूलोक में जन्म लेकर उस पाप का दंड भोगो। बाद में विष्णु का अनुग्रह प्राप्त करके फिर से गंधर्व बन जाओगो।'' कहकर शाप दिया।

उस रूप में तुंबुरु ने भूलोक आकर भयानक तप किया। फाल्गुण मास में ही वहाँ ब्रह्मादि देवतागण स्नान करने आयेंगे। उनके आने पर 'उन के साथ तुम भी मेरे साथ स्नान करो' कहते हुए स्वामी ने तुंबुरु को

आदेश दिया। उस रूप में तुंबुर उस तीर्थ में स्नान करते ही पुनः गंधर्व रूप और आकाशयान शक्ति प्राप्त की।

इस तुंबुरु ने ही त्रेतायुग में 'विराध' नामक राक्षस के रूप में पैदा होकर श्रीराम के हाथों से मरकर मुक्ति को प्राप्त किया। इस तुंबुरु ने ही द्वापर युग में संजय के रूप में अवतरित होकर धृतराष्ट्र को महाभारत युद्ध के बारे में सुनाया। संजय के मुँह से ही हमें श्रीकृष्ण के द्वारा 'भगवद्गीता' सुनने का मौका प्राप्त हुआ है। इस रूप में सभी युगों में प्रतिध्वनित होनेवाली श्रीमहाविष्णु की लीलाएँ ऐसे पुण्य-तीर्थों की गाथाओं में दिखाई देती हैं।

ऐसे तीर्थों में कैसे स्नान करना चाहिए, इस विषय को लेकर श्री पी.वी.आर.के.प्रसाद ने अपने 'तिरुमल लीलामृत' नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखाः

'इन स्नानों को तब करना होता है जब इनके बारे में हमारे पास पूरी जानकारी हो। तीर्थ महिमा को पूर्णरूपेण जानकर करना चाहिए। महिमा को जानकर स्नान करते समय उस तीर्थ महिमा का स्मरण करते हुए, किस-किसने इन तीर्थों में स्नान करके मुक्ति प्राप्त की, उनका स्मरण करते हुए, हमसे किए गये पापों के लिए पश्चाताप करते हुए, स्नान करने से प्राप्त होनेवाले स्नान फल को कृष्णार्पणमस्तु कहते हुए श्रीनिवास को समर्पित करना चाहिए। तभी, समस्त पाप मिट जाएँगे। ऐसा कोई पुण्य नहीं बचेगा जो प्राप्त न हुआ हो।' (पृष्ठः 52)

श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के दर्शन के अंशभाग, तीर्थ दर्शन - स्नान - पापों से मुक्ति प्रदान करनेवाला विषय अत्यंत मुख्य है। 'वें' का मतलब पाप, 'कट' का मतलब दमन करना होता है। इन तीर्थों के कारण ही

पापों का प्रक्षालन होता है, इसके ज्ञान के प्रचार के लिए ही मैं इसके बारे में बता रहा हूँ।

ज्ञान प्राप्त करके स्नान करना क्या है? तुंबुरु की कहानी के द्वारा कौन-सा ज्ञान प्राप्त होता है?

अन्नमाचार्य ने एक संकीर्तन में इस ज्ञान के बारे में विवरण प्रस्तुत किया, यथा -

मनुजुडै पुट्टि मनुजुल सेविंचि
अनुदिनमुनु दुःखमंदनेल?

इस संकीर्तन के अनुसार मनुष्यों की सेवा करके आज तक किसी ने मुक्ति नहीं पाई। भगवान पर विश्वास करके, सेवा करने के बाद बुरा बनने वाले भी आज तक कोई नहीं है, ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है। यही मंदिर दर्शन का परमार्थ है। इस परमार्थ को तीर्थस्नान नामक यह संप्रदाय जानकारी प्रदान कर रहा है। श्रीनिवास की कृपा-विशेषता ही इतने पुण्यतीर्थों में प्रसारित हो रही है। गहराई से देखने पर - दर्शन करने पर प्रत्येक तीर्थ गाथा के पीछे अनंत धार्मिक स्फूर्ति दिखाई देती है।

एक और तीर्थ के बारे में बताकर, तीर्थ स्नान के बारे में भगवान के उपदेश का स्मरण करेंगे।

'कुमार धारा' को लेकर एक कथा लोकप्रचलित है। एक वृद्ध ब्राह्मण, वेङ्कटाचल पर आकर आत्म हत्या करने का निर्णय करके देवतागण और स्वामी को संबोधित करके चीकते हुए अपनी चिंता प्रकट की।

स्वामी ने एक राजकुमार के वेश में आकर 'रुको! पहाड के ऊपर से मत कूदो। आत्महत्या मत करो। इस शरीर को भगवान ने साधना

करने के लिए तुम्हें दिया है। शास्त्र के अनुसार आत्महत्या करना महापाप है। तुमको मालूम है न!' कहा।

वृद्ध ब्राह्मण रुक गया। स्वामीजी ने स्वयं उसे एक तीर्थ के पास ले जाकर स्नान कराया। आश्चर्य की बात है ! तत्क्षण वह वृद्ध अपने बुढापे को खोकर युवक बन गया। बाद में धनी बना। मार्कंडेय पुराण के अनुसार वह तीर्थ ही 'कुमरा धारा' है।

एक और पुराण के अनुसार (स्कांद पुराण) इस कुमार धारा में यहाँ स्कंद यानी सुब्रह्मण्यस्वामी ने स्नान किया। इसलिए उसका नाम 'कुमार धारा' पडा है, ऐसी कहानी है। कुछ भी हो सुब्रह्मण्य देव सेनापति बने। बाद में उन्होंने ताराकासुर का संहार किया।

इन पौराणिक गाथाओं के माध्यम से दो बातें स्पष्ट होती हैंः

1. भगवान ने शरीर को साधना के लिए दिया। 2. धन को दान देने के लिए दिया है। इन दोनों विषयों का स्मरण करते हुए पुण्य तीर्थों में स्नान करना चाहिए।

अंत में एक बात बताना आवश्यक है। आज अधिकांश भक्तों को पुष्करिणी में कैसे स्नान करना है, यह मालूम नहीं है। ब्राह्मणों को, सुहागिनों को दक्षिण तांबुलादि समर्पित करके, पति-पत्नी (वधु और वर) को स्नान करने से पहले अपने वस्त्रों में गांठ बांधकर तीन बार डुबकी लगानी होती है। बुजुर्गों का कहना है कि यह 'स्नान नियम' है।

सत्संतान चाहनेवाले, पुष्करिणी में इस रूप में स्नान करते थे। करनेवाले अब भी नहीं है ऐसी बात नहीं है। लेकिन, श्री श्रीनिवास के

दर्शन के पहले पुष्करिणी में स्नान करके वराह स्वामी का दर्शन करके बाद में श्रीनिवास के मंदिर के निकट पहुँचना होगा।[1]

अहं दूरतस्ते पदाम्बोजयुग्म
प्रणामेच्छया गत्य सेवाम् करोमि
सकृत्सेवया नित्यसेवाफलं त्वम्
प्रयच्छ प्रयच्छ प्रभो वेङ्कटेशा !

हे स्वामी ! वेङ्कटेश प्रभो ! तुम्हारे चरण कमलों की सेवा के लिए काफी दूर से आया हूँ। सेवा कर रहा हूँ। ऐसे ही एक बार की सेवा नित्य तुम्हारी करते प्राप्त होनेवाले फल को मुझे दया करके प्रदान करो।

एक ही बार सेवा करने से स्वामी की दया प्राप्त होती है क्या? इस श्लोक के 'सुकृत' नामक पद श्रीमद्रामायण के श्रीराम की प्रतिज्ञा को सूचित करता है। बहुत बडा भगवदानुग्रह का रहस्य इस शब्द में छिपा हुआ है।

अपने पास शरण मांगते हुए आये विभीषण को श्रीराम ने अनुग्रह किया। श्रीराम ने अपने व्रत के बारे में इस रूप में बताया -

1. तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् वाले, सात्विक आहार के बारे में, यानी मद्यपान से दूर रहने, ब्रह्मचर्य का पालन करने आदि सांप्रदायिक नियमों का प्रचार कर रहे हैं। उनका पालन करके ही स्वामी का दर्शन करना चाहिए। श्रीवैष्णव संप्रदाय में पद्मावती माताजी के 'पुरुषाकार' प्राप्त किए बिना स्वामी का दर्शन कार्य पूरा नहीं होगा। इसलिए तिरुचानूर में पद्मावती माताजी का दर्शन करने के बाद ही तिरुमल में स्वामी का दर्शन करना होगा, ऐसा नियम भी है। इस मर्यादा का पालन भी सबको करना चाहिए इस रूप में प्रार्थना करनी चाहिए।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते
अभयम् सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतम् मम।

एक बार मेरी शरण में आना पर्याप्त है। मैं तुम्हारा हूँ, ऐसी प्रार्थना करना ही पर्याप्त है। मैं समस्त भूत राशी की रक्षा करता हूँ। यह मेरा नियम है।

श्री श्रीनिवास इसी रूप में रक्षा करेंगे, ऐसे विश्वास के साथ प्रार्थना करनी चाहिए।

अध्याय - 3
श्रीनिवास की अर्चामूर्ति का दिव्य दर्शन

भगवान श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीनिवास को परमतत्व के रूप में मानते हुए अर्चना की है। श्रीमन्नारायण तत्व परमगुह्य है। इस तेजोवैभव तत्व को केवल योगसाधक ही निरंतर तपोध्यान समाधिस्थित अवस्था में प्राप्त कर पाते हैं। इसलिए सृष्टि की स्थिति-लय के निर्वहण करनेवाले परमतत्व के रूप में स्वामी का कीर्तन करते हुए इस रूप में आदेश दिया गया है -

अखिलभुवनजन्मस्थेम भंगादिलीले
विनत विविधभूतव्रात रक्षैकदीक्षे
श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे
भवतु मम परस्मिन शेमुषी भक्तिरूपा

चौदह भुवनों की सृष्टि, स्थिति, लय को लीला के रूप में निर्वहण करनेवाले, शरण में आये सकल भूत समुदाय का संरक्षण करने का नियमबद्ध, वेदांत प्रतिपादित परब्रह्म रूपी श्रीनिवास परमब्रह्म के प्रति मेरी भक्ति 'प्रज्ञा' में निरंतर एवं स्थिर तैयार रहे !

श्री श्रीनिवास, 'अर्चारूप' प्राप्त करके आनंद निलय विमान में दर्शन दे रहे हैं। इस अर्चारूप के पीछे आगम शास्त्र ही पृष्ठभूमि बनती है। भगवान, भक्त के निकट आने के लिए 'विग्रह' रूप धारण करके भक्त सुलभ नाम कमाता है। हमारे द्वारा प्रस्तुत की जानेवाली सेवाएँ, अलंकार, समर्पित भेंट आदि को स्वीकार करके, प्रसन्न होकर हमें अनुग्रह करते हैं। यही 'अर्चामूर्ति' का प्रयोजन है। इसी रूप को ध्रुव बेर

और मूल विराट कहकर भी पुकारते हैं। इस रूप में शिला, लोह, दारु, सुगंधादि पदार्थों में स्वामी आविर्भूत होकर, देवतागण, ऋषिगण, महात्माओं और भक्तों के द्वारा पूजित रूप में, अर्चना के लिए अनुकूल रहनेवाला रूप ही अर्चारूप है। तिरुमल के श्रीनिवास का मूल विराट भी अतिविचित्र भूमिका के साथ है। यह स्वयं व्यक्त रूप है, स्वयंभु है, अपने आप अविर्भूत हुआ है। शालग्राम शिला रूप है। श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम् के विवरण के अनुसार शिल्प शास्त्र की किसी भी मर्यादाओं का पालन नहीं करनेवाले स्वतंत्र,आकार, रूप,गुण, प्रमाण प्राप्त श्री श्रीनिवास स्वयं श्रीवेङ्कटेश्वर के रूप में शिला रूप में अविर्भूत हुए हैं।

स्वामी ने चतुर्भुजाओं से अर्चा रूप को प्राप्त किया है। यह श्रीनिवास का ध्रुव बेर है।

श्रीमन्नारायण चतुर्भुजी हैं।

वनमाली गदी शारंगी शंखी चक्री च नंदकी
श्रीमन्नारायणो विष्णुः वासुदेवोऽभिरक्षतु

इस रूप में विष्णु सहस्रनाम स्पष्ट कर रहा है। वनमाला (तुलसी माला), कौमुदी नामक गदा, शारंग नामक धनुष, पांचजन्य नामक शंख, सुदर्शन नामक चक्र - इन्हीं के साथ स्वामी दर्शन देते हैं।

इस स्वामी के पांच रूप हैं। इन पांच रूपों में यह महातत्व व्यक्त होता रहता है।

1. पर स्वरूप : यह वैकुंठ में शेष शयन पर श्रीदेवी और भूदेवी समेत स्थित, अनंत, विश्वक्सेन, गरुडादि के द्वारा, मुक्त पुरुषों के द्वारा आराधना प्राप्त करनेवाले नित्य सत्य रूप हैं।

2. व्यूह स्वरूप : सृष्टि की स्थिति-लय के निर्वहण करने के लिए, जीव कोटी का अनुग्रह करने के लिए प्रवेश करनेवाले रूप, इन्हीं को विष्णु, पुरुष,सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध के रूप में बताते हैं। कुछ भी हो, 'विष्णु' पूजा तो एक 'व्यूह' मूर्ति की अर्चना करने का विधान ही है। (बलि चक्रवर्ती को विनयशील बनाने के लिए 'वामन' अवतार धारण करना भी एक व्यूह ही था। विष्णु को इसलिए मायावी कहा जाता है।)

3. विभव स्वरूप : यह रूप, दुष्ट दंडन, शिष्ट रक्षण, धर्म संस्थापन के लिए अवतरित है। श्रीराम, श्रीकृष्णादि रूप विभव रूप ही हैं।

4. अंतर्यामी स्वरूप : अंतर्निहित रूप में, केवल ज्ञान गोचर, हृदय कमल कोश में वास होकर कांति रूप में प्रकाशित होनेवाला चेतन रूप है यह। योगियों के द्वारा ध्यान किए जानेवाला रूप भी यही है।

5. अर्चा स्वरूप : आश्रित जनों के लिए विविध पदार्थों में अविर्भूत होकर, विभव स्वरूप लक्षणों के साथ रहनेवाले, देश,कालादि नियमों से परे, सर्वसहिष्णु, अर्चक पराधीन होकर मंदिर और गुहादि में पूजा प्राप्त करनेवाले रूप अर्चा रूप हैं।

श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी अर्चा मूर्ति रूप में दर्शन देने के बावजूद, - स्वामी के चारों ओर बाकी चार रूप फैलकर क्षेत्र, तीर्थ, पुराण, इतिहास रूपों से योगी और भक्तों के हृदयों में व्याप्त हुए हैं। इसे पहचानने के बाद लगेगा कि यहाँ स्थित 'मूर्ति' सामान्य मूर्ति नहीं है। वह विराट रूप है। भक्तों पर वात्सल्य बरसाने का गुण उसमें है। उसकी प्रभा और प्रतिभा भक्तों के अंतर्नेत्रों को निरंतर अनुभव में आते दिखाई देती हैं। सभी भक्त इस सत्य को स्वीकार करते हैं। यही स्वयंव्यक्त रूप का वैशिष्ट्य है।

''इन अर्चा रूपों में स्वयं व्यक्तर्चारूप बहु शक्तियुक्त होकर प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार के स्वयंव्यक्तर्चा रूपों में अग्रस्थान प्राप्त करके पूरे ब्रह्मांड में अद्वितीय रूप में प्रकाशवान स्वामी ही श्री श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी हैं''- पूज्य पंड़ित वेदांत जगन्नाथाचार्य ने इस रूप में वर्णन किया है। (देखिए - श्रीवेङ्कटेश्वर वैभव, पृष्ठः 9, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का प्रकाशन)

इस विशिष्ट रूप को ही पर स्वरूप के रूप में मानकर ब्रहादि देवतागण रात के समय अर्चना करते हैं, यह पौराणिक उक्ति है। व्यूह स्वरूप के रूप में श्रीमहाविष्णु का पूजा विधान वैखानस की आराधना में प्रमुख होना, विभव स्वरूप धारी श्रीनिवास मूर्ति श्रीराम, श्रीकृष्ण अवतारों के क्रमपालन रूप होना, अंतर्यामी के रूप में स्वामी सभी वर्ग, जाति, भाषा-भाषी, स्त्री-पुरुषादि को एक समान 'बंधु' के रूप में देख-भाल करना, स्वप्न दर्शन, प्रबोध आदि में स्वयं ही नायक के रूप में विराजमान होकर 'मौन' गति से सभी कार्य स्वयं संपन्न करते रहना, केवल इस तिरुमल क्षेत्र के स्वामी में ही देख सकते हैं।

इसीलिए हे वेङ्कटेश ! तुम्हारे दर्शन करने के लिए दो नेत्र पर्याप्त नहीं है। दस हजार नेत्र चाहिए - इस भाव को प्रकट करते हुए त्यागय्या ने कहा -

पल्लवि : वेङ्कटेश निन्नु सेविंपनु पदिवेल कन्नुलु कावलेनय्या!

अनु।।प।।: पंकजाक्ष परिपालित मुनिजन
भावुकमगु दिव्यरूपमुनुगोन्न ।। वेङ्क ।।

चरण : योगिहृदय नीवे गतियनि जन
भागधेय वरभोगीश शयन

भागवतप्रिय त्यागराजनुत
नागाचलमुपै बागुग नेलकोन्न ।। वेङ्क ।।

(अर्थात् हे वेङ्कटेश ! तुम्हारा दर्शन करने के लिए दो नेत्र पर्याप्त नहीं हैं। दस हजार नेत्र चाहिए। हे पंकजाक्ष, मुनिजन परिपालित दिव्यरूपवाले स्वामी ! हे वीर भोगेश शयन स्वामी योगी लोग भी तुम्हारी शरण में आते हैं। हे नागाचल पति तुम्हारे पास सभी आश्रय के लिए आते हैं।)

'परिपालित मुनिजन' प्रयोग से त्यागराज स्वामी ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि भगवान निरंतर मुनिजनों, साधु-सत्पुरुषों की रक्षा करने के लिए अपनी महिमाओं का प्रदर्शन किया है। 'परम योगी हृदय निवास स्वामी' उच्चतम संबोधन है।

श्रीमान ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने स्वामी के मूल विराट का दर्शन करते ही पुलकित होकर इस रूप में यशोगान किया है -

पल्लवि : पोडगंटिमय्या मिम्मु - पुरुषोत्तमा मम्मु
नेडयकवय्या कोनेटि रायडा ।। पो ।।

चरण : कोरि मम्मु नेलिनट्टि कुलदैवमा चाल
नेरिचि पेद्दलिच्चिन निधानमा
गारविंचि दप्पिदीर्चु कालमेघमा! माकु
चेरुव चित्तमुलोनि श्रीनिवासुडा ! ।। पो ।।

भाविंप कैवसमैन पारिजातमा ! मम्मु
चेवदीर गाचिनट्टि - चिंतामणी
कामविंचि कोरिकलिच्चे - कामधेनुवा ! मम्मु
तावै रक्षिंचेटि - धरणीधरा - - - ।। पो ।।

चेडनीक ब्रदिकिंचे - सिद्धमंत्रमा! रोगा
लडचि रक्षिंचे - दिव्यौषधमा !
बडिबायक तिरिगे - प्राणबंधुडा ! मम्मु
गडिइंचिनट्टि श्री वें - कटनाथुडा ।। पो ।।

(अर्थात् हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारे दिव्य दर्शन करके मेरा जीवन धन्य हो गया है। हे कुल देव ! स्वयं तुमने अपनी इच्छा से मुझे बुला लिया है। तुम मेरे लिए पूर्वजों के द्वारा दिया गया निधान है। मन के अंदर रहनेवाले हे वेङ्कटेश ! तुम 'कालमेघ' बनकर सबकी प्यास बुझाते हो। सबको वरदान देनेवाले तुम चिंतामणि, काल, पारिजातम, कामधेनु और जन जन के रक्षक हो। दिव्यौषध देकर सबको बचानेवाले तुम सिद्ध मंत्र हो। तुम सब के बंधु हो, ऐसा नाम पानेवाले श्रीवेङ्कटनाथ हो।)

आंध्र प्रदेश में, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र में अधिकांश लोगों का 'कुल देव' श्रीनिवास ही हैं। पीढी-दर-पीढी तक श्रीनिवास की पूजा करते आना श्री श्रीनिवास के संदर्भ में अक्षर सत्य है।

इसीलिए तेलुगु प्रांत के लोग स्वामी को अपना 'गृह देव' मानते हैं। वे भी यहाँ के लोगों के साथ 'बांधव्य' जोडकर घर के एक बुजुर्ग के रूप में हमारा कुशल क्षेम पूछते हैं। यही अर्चा मूर्ति के विषय में बताया जानेवाला 'सुलभ' सत्य है। वे भक्त वत्सल हैं। वे ऐसा बतानेवाले देव हैं कि मैं भक्तों के लिए अपना प्रिय वैकुंठ को भी छोड सकता हूँ -

वैकुंठम् वा परित्यक्ष्ये - न भक्तांस्त्यक्तुमुत्सहे
मेऽतिप्रिया हि मद्भक्ता - इति संकल्पवानसि ।।

यह पुराणोक्ति है। मैं वैकुंठ को छोडकर रह सकता हूँ। अपने भक्तों को छोड कर एक पल भी नहीं रह सकता। मुझे अत्यंत प्रिय लगने वाले

तो मेरे अपने भक्त ही हैं। 'उनकी रक्षा करना ही मेरा संकल्प है' - ऐसी दीक्षा रखनेवाला स्वामी अन्यत्र दिखाई नहीं देते। इसीलिए स्वामी अलग-अलग व्यक्तियों को, अलग-अलग रूप में दिखाई देकर, उत्साहित कर - प्रेरित कर, वत्सलता दिखाकर, सहलाकर, अपनी बात नहीं मानने पर गाल पर मारकर, पीठ पर पीटकर 'रास्ते' में लाते हैं। लेकिन बीच में उन्हें छोडते नहीं हैं। ऐसी अनुभूति करोडों भक्त, स्वामी का दर्शन करते समय पाते हैं। यही किसी की समझ में नहीं आनेवाला रहस्य है। इसीलिए स्वामी को पूर्वजों के द्वारा दिया गया 'निधान' बताया गया हैं। यह सबसे बडी संपदा है। आगे इस रूप में स्वामी की पूजा करो! यह उक्ति बुजुर्ग लोगों की ही हैं। इसीलिए स्वामी घर के कोने में रहनेवाला 'निधान' है।

'कालमेघ' के रूप में स्वामी काले वर्ण के होते हैं। यह कालापन स्वामी का अव्यक्त रहस्य प्रतीक है। भागवत में गोपबालाओं ने इस कालेवर्णवाले की खोज करते हुए इस रूप में कुहा है -

नल्लनिवाडु पद्मनयनंबुलवाडु कृपारसंबु पै
जल्लेडुवाडु मौलिपरिसर्पित पिंछमुवाडु नव्वु रा
जिल्लेडु मोमु वाडोकडु चेल्वल मानधनंबु दोचेनो
मल्लियलारा! मी पोदल माटुन लेडु गदम्म चेप्परे !

(अर्थात् कालेवर्णवाले, कमल जैसे नेत्रवाले, सब पर कृपारस बरसानेवाले, मोर के पंख पहननेवाले, सतत हँसमुखी, अपनी प्रेयसियों के मन की चोरी करनेवाले, ऐसे प्रिय कहीं अपने वृंदा में छिपे हुए हैं, नहीं न, हे जुही की कलियाँ बताओ रे!)

ठीक उसी प्रकार के 'कालेवर्णवाले' आज का श्री श्रीनिवास है। उस प्रकार के पद्म नेत्र ही, कृपारस मूर्ति, हँसमुख ऐसा ही है। दुनिया के सभी

लोगों के रहस्यों को अपने में समेटकर रखनेवाले हैं। उन दिनों में श्रीकृष्ण ने ऐसे ही कार्य किए थे न!

'कालमेघ' - अच्छी बारिश देता है। स्वामी भी भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करके उनकी भूख-प्यास बुझाते हैं। संपदा देते हैं। भक्ति प्रदान करते हैं। अंत में मुक्ति भी देते हैं। इसलिए वे भक्त पारिजात हैं। भक्त चिंतामणि और भक्त पारिजात, भक्तों की समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं, ऐसा पुराणों में कहा गया है कि ये दिव्य वृक्ष कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

'सिद्ध मंत्रमु' स्वामी के इस संबोधन में एक रहस्य है। स्वामी स्वयं अपने भक्तों के पास जाकर उनके स्मरण में मंत्र के रूप में रहकर उन का उद्धार करते हैं। नारद ने प्रह्लाद को परम वैष्णव बनाया। प्रबोधित मंत्र 'नारायण' मंत्र ही है। यह प्रह्लाद की सफलता नहीं है। बल्कि जन्म से ही यह संस्कार उस भक्त श्रेष्ठ को प्राप्त हुआ। उसी रूप में 'वेङ्कटेशु' मंत्र भी जिस भक्त के पास जाना होता है, ले जाता है। इसीलिए कई ऐसे संदर्भ हैं, जहाँ नास्तिक भक्तों ने भी परमास्तिक भक्त बनकर मुक्ति को प्राप्त किया है।

वे 'द्विव्यौषध' - पुनर्जन्म से मुक्ति प्रदान करनेवाले परमोत्कृष्ट दिव्यौषध हैं। उसे एक बार लेना पर्याप्त है। दूसरे औषधि की आवश्यकता ही नहीं पडती। उसे लेने पर हर प्रकार का क्लिष्ट, शारीरिक, मानसिक, आध्यत्मिक, इच्छाओं रूपी रोग मिट जाएँगे। वैसे अमृत सुधा सागर हैं वे।

अंत में वे 'प्राणबंधु' हैं। विष्णुसहस्र नाम में भीष्म ने इस रहस्य को खोला है।

आर्ता विषण्णा शिथिलश्च भीताः
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रम्
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवंति।।

आर्तजन, जो दुःखी हैं, बुढापे के कारण जीर्ण शरीरवाले, भय से कांपनेवाले, तीव्र रोगों से पीडित लोग, नारायण कहकर, दुःख से दूर होकर सुखी बन रहे हैं।

श्री श्रीनिवास को इसलिए 'प्राणबंधु' कहते हैं। ऐसे भगवान का दर्शन करने से क्या ही अनुभूति मिलती है, इसकी कल्पना कर लीजिए।

मंदिर दर्शन :

संस्कृत के 'देवालय' शब्द का तेलुगु भाषा में 'कोवेला' अर्थ है। इसी को तमिल में 'कोइल' कहते हैं। 'को' का मतलब भगवान तथा 'इल' का मतलब मंदिर है। इस रूप में कोइल का मतलब भगवान का मंदिर है। इसीलिए वैष्णव महाभक्त श्रीनिवास जहाँ रहते हैं, उस 'कोइल' को भी एक 'आलवार' (भक्त श्रेष्ठ) के रूप में मानते हैं। नित्य सुगंधादि पदार्थों के साथ उसे अत्यंत सुगंधित एवं शुद्ध रखते हैं। कस्तूरी, चंदन, सुगंध, पुनुगु, जवादि परिमल पदार्थों की सुगंध के साथ साथ श्री श्रीनिवास की रसोई से आनेवाले अन्नप्रसाद की खुशबू से श्रीनिवास का मंदिर एक आध्यात्मिक आनंद से भरा रहता है। साथ ही वह सभी भक्तों के मन में प्रसन्नता एवं माधुर्य को जगाता है।

सर्वप्रथम, बाहर से दिखाई देनेवाला 'महाद्वार गोपुर' है। इसी को 'पडिकावली' कहते हैं। देवतागण भी यहाँ तक पहुँचकर स्वामी के दर्शन

का इंतजार करते हैं। 'पडिकावली' - तेलुगु में कावली का अर्थ इंतजार है। इसके चारों ओर एक प्रांगण भी है। इसी को 'संपेंग' प्राकार कहते हैं। इसके अंदर एक और प्राकार है। इसे 'विमान' प्राकार कहते हैं। इसके अंदर 'आनंदनिलय' गर्भालय के चारों ओर एक छोटा परिक्रमा-मार्ग है। इसे 'चूलिका' कहते हैं। धनुर्मास में शुद्ध एकादशी, द्वादशी के दिन भक्त इस मार्ग से होते हुए (इसे वैकुंठ द्वार कहते हैं।) स्वामी की परिक्रमा करके धन्य होते हैं।

इन सबको पार करके अंदर पहुँचने के बाद स्वामी का दर्शन होता है। इस बीच कृष्ण राय मंडप, रंगनायक मंडप, अद्दाल (आईना) मंडप, तिरुमल राय मंडप, कल्याण मंडप(संपेंगि प्राकार में), रसोई (पडिपोटु), सोने का कुँआ (बंगारुबावि/लक्ष्मी तीर्थ), फूल कुँआ (भूतीर्थ), ध्वज स्तंभ मंडप, चांदी का द्वार, वरदराज स्वामी मंदिर, घंटा मंडप, गरुडाल्वार सन्निधि, जय-विजय की मूर्तियाँ - दिखाई देते हैं। प्रत्येक जगह पर स्वामी से संबंधित कोई न कोई पुरा-स्मृति हमें अपनी ओर आकर्षित करते हुए हमारे कुशल क्षेम पूछती है।

जय-विजय के पंच-लोह मूर्तियों के बीच में रहनेवाला मुख्य द्वार ही 'बंगारु वाकिली' (सोने का द्वार) है। इसके अंदर जाने से 'स्नपन मंडप' दर्शन देता है। यहीं पर प्रत्येक दिन भोग श्रीनिवास का 'दरबार' चलाया जाता है।

इसके अंदरवाला प्रांगण 'श्रीरामुलवारि मेड' (श्रीराम का भवन) कहलाता है। माना जाता है कि किसी जमाने में यहाँ श्रीराम, लक्ष्मण और उनके परिवार के लोगों की मूर्तियाँ थीं। इसीलिए यह नाम पडा है।

इसके अंदरवाला कमरा 'शयनमंदिर' है। यानी गर्भालय के सामनेवाला यह अंतराल है। यहीं पर रात के समय स्वामी के लिए 'एकांत सेवा' (शयन सेवा) की जाती है।

इसके बाद 'कुलशेखरप्पडी' (देहली) आती है। इसके अंदर ही 'आनंदनिलय' नाम से सुशोभित स्वामी का गर्भालय है।

आनंदनिलय :

श्रीनिवास की दिव्यमंगल मूर्ति इस गर्भालय की पश्चिम दिशा की दीवार के निकट है। स्वामी नित्यप्रति खडी मुद्रा में रहते हैं। यह स्वामी की भक्तत्राण-परायणता और नित्य तैयार रहने का सूचक है। लेटी हुई मुद्रा से उठकर खडे होने में समय लगता है। आर्त भक्तों की रक्षा में विलंब हो सकता है। इसलिए स्वामी बिना आराम के, लेटे बिना, भक्तों की आर्त-पुकारें खडे खडे ही सुनते हैं। तत्काल उनकी समस्याओं के समाधान के लिए किसे भेजना है निर्णय करने के लिए तत्पर रहते हैं। त्रेतायुग के श्री रामचंद्रमूर्ति के रूप में धनुर्बाण के साथ तैयार दिखाई देते हैं।

इस गर्भालय के मूल विराट के साथ भोग श्रीनिवास मूर्ति, दरबारी श्रीनिवास मूर्ति, उग्र श्रीनिवास मूर्ति, उत्सवमूर्ति मलयप्प स्वामी (श्री, भू समेत) मूर्तियों के साथ साथ रुक्मिणी श्रीकृष्ण की चांदी की मूर्तियाँ, श्रीराम,लक्ष्मण की पंचलोह मूर्तियाँ, श्रीसुदर्शन चक्रत्ताल्वार पंचलोह मूर्ति, कुछ शालग्राम भी वहाँ विराजमान होकर नित्य पूजाएँ प्राप्त कर रही हैं।

मूलविराट वर्णन :

दायें कंधे पर चक्र, बायें कंधे पर शंख, नीचे दायाँ हाथ वरद हस्त की मुद्रा में, बायाँ हाथ अभय हस्त की मुद्रा में, त्रिभंगी आकार में, कमर के पास एक ओर झुके हुए, अद्भुत विलास भंगिमा में, स्वामी आनंद निलय कल्याण मूर्ति के रूप में साक्षात्कार देते हैं।

श्रीनिवास गद्य में श्रीस्वामी के दिव्यमंगल रूप का वर्णन अत्यंत शोभायमान रूप से किया गया है। स्वामी के द्वारा धारण किए गए आभरण, वनमाला, भुजकीर्तियाँ, हस्त, जंघाएँ, पादपद्म ही नहीं - ''नवीन परितप्त कार्तस्वर कवचित महानीय पृथुल सालग्राम परंपरागुंफित नाभि मंडल पर्यंत लंबमान प्रालंबदीप्ति विशालवक्षःस्थलः'' रूप में वर्णित है। विशाल वक्षःस्थल के साथ, सोने के पानी से पोता हुआ शालग्राम हार के साथ स्वामी नित्य शोभित रहते हैं। नित्योत्सव, पक्षोत्सव, मासोत्सव, संवत्सरोत्सव आदि विविध उत्सवों की पूजा ग्रहण करनेवाले हैं यह स्वामी। उनके दर्शन करते ही उन पर शोभित आभरण, फूलों की मालाएँ, लंबा किरीट, अतिगंभीर राजस के साथ मूर्ति का वैभव भक्तों को घेरकर आश्चर्य में डाल देता है। किसी को भी उस मूर्ति के अंगविन्यास, वक्षःस्थल की श्री, भू मूर्तियों और दूसरे विवरण दिखाई नहीं देते हैं।

इसीलिए श्रीनिवास की अर्चा मूर्ति को जितने हो सके उतने निकट से देखने की इच्छा जागती है। किंतु वह केवल एक 'शुक्रवार' को ब्राह्ममुहूर्त में संपन्न होनेवाले अभिषेक के समय ही संभव है। उन दिनों के अन्नमाचार्य ने अभिषेक का सांगोपांग वर्णन करके स्वामी के रूप लावण्य के वैभव को इस रूप में बताया है -

पल्लवि : कंटि शुक्रवारमु - गडियलेडिंट
अंटि अलमेल्मंग - अंडनुंडे स्वामिनी ।। कंटि ।।

चरण : सोम्मुलन्नी कडबेट्टि - सोंपुतो गोणमु गट्टि
कम्मनि कदंबमु - कप्पु पन्नीरु
चेम्मतोन वेष्टुवलु - रोम्मुतल मोलचुट्टि
तुम्मेद मैचायतोन - नेम्मदि नुंडे स्वामिनि ।। कंटि ।।

पच्चकप्पुरमे नूरि - पसिडिगिन्नेल नुंचि
तेच्चि शिरसादिग - दिगनलदि
अच्चेरपडि चूड - अंदरि कन्नुलकिंपै
निच्चेमल्ले पूवुवले - निटु ता नुंडे स्वामिनी ।। कंटि ।।

तट्टुपुनुगे कूरिचि - चट्टलु चेरिचि निप्पु
पट्टि करगिंचि वेंडि - पल्याल निंचि
दट्टमुग मेनु निंड - पट्टिंचि दिद्दि
बिट्टु वेडुक मुरियु - चुंडे बित्तरि स्वामिनी ।। कंटि ।।

(अर्थात् आज शुक्रवार के दिन माता अलमेल्मंगा के साथ रहनेवाले श्रीवेङ्कटेश को मैं ने देखा है। आभरण सब अलग करके केवल कौपीन के साथ विविध परिमल द्रव्यों के साथ शोभित शांत मूर्ति स्वामी को देखा है। सोने के बर्तनों में कपूर को पीसकर तिरुनाम लगाया गया है। इसे देखने के लिए ही सभी स्वामी के पास आ रहे हैं। पुनुगु चंदनादि परिमल द्रव्यों से सुशोभित स्वामी को मैं ने देखा है।)

उस स्वामी का दर्शन कितने सुंदर ढंग से किया है देखिए। अभिषेक के समय में एक भी आभरण नहीं होता है। सुंदर ढंग से एक स्नान कौपीन

ही पहनाते हैं। श्रीनिवास के ऊर्ध्व पुंड्र को आधा बनाकर सूक्ष्म ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं। अखंड दीपों के प्रकाश में स्वामी के सुंदर रूप को देखनेवाले भक्तों को श्री श्रीनिवास को देखकर मुग्ध होनेवाली वकुलमाला की याद आती ही है। उस धुन में वे ही यशोदा और वकुलमाता बन जाते हैं। सभी परमात्मा की दिव्य कांतिवलय में छोटे दीपों के रूप में बदल जाते हैं। उस सौंदर्य को किन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं। अलंकारों के कारण स्वामी सुंदर लग रहे हैं, ऐसी भावना पूरी तरह गलत, ऐसा समझ में आ जाता है। वे अलंकार स्वामी के दिव्य शरीर पर रहने से ही सार्थक हुए हैं। 25 वर्षों का युवक, विवाह के लिए तैयार नित्य वर के रूप में एक आजान बाहु, विशाल वक्षःस्थल वाला, विशाल मस्तकवाला, सुंदर गाल, लंबे लंबे कान, सीधी नाक, हंसमुख, गंभीर मुँह, भक्तों को आर्ति से आलिंगन करनेवाले, अभय, वरद हस्त, वक्षःस्थल पर निरंतर विहार करनेवाली व्यूह लक्ष्मी (वही श्री देवी, इनके कारण ही स्वामी श्रीनिवास हुए हैं) बलिष्ठ जंघाएँ, कमर के पास छोटी परत, (बाल कृष्ण की याद दिलानेवाली मुद्रा), अतिलोक दयामृत लहरों को फेंकनेवाले पादारविंद, नीचे रहनेवाला पद्मपीठ - इन सबको देखकर भक्त एक सम्मोहन में पड जाता है। सब के हाथ नमस्कार करते हैं, पलके बंद हो जाते हैं। बाह्य दुनिया का होश समाप्त हो जाती है।

इतने में अभिषेक शुरु हो जाता है। अपनी छाती पर ही स्थित लक्ष्मी माताजी के लिए शुक्रवार मुख्य होने के कारण - उस माताजी के साथ अपने लिए भी शुक्रवार के दिन अभिषेक करवालेना स्वामी को अत्यंत प्रिय है। अभिषेक का समय स्वामी के मंदिर में अत्यंत मुख्य है। जियंगार्लु, मंदिर के अधिकारी गण, एकां गी, परिचारक, आचार्य पुरुष

(अर्चक स्वामी) सब मिलकर अभिषेक में भाग लेते हैं। परिमल कमरे से चांदी के बर्तनों में श्रीनिवास के ऊर्ध्व पुंड्र के लिए तैयार रखा गया कपूर, कस्तूरी ले आते हैं। अधिकारी गण केसर के फूल, चंदन के टुकडे, हल्दी से भरे चांदी के बर्तन लाते हैं। परिचारक कपूर, केसर, पुनुगु चंदन के मिश्रण को 'परिमल' नामक सुगंध द्रव्य में मिलाकर लाते हैं।

इन सबको वहाँ पहुँचाने के बाद श्री लक्ष्मी समेत समश्लिष्ट भुजाओंवाले श्रीनिवास का अभिषेक प्रारंभ होता है। सर्वप्रथम अर्चक स्वामी 'उष्णीसम' (सर पर पहननेवाला कपडा) पहनकर सर्वप्रथम माताजी और स्वामी जी को नमस्कार करके पहली बार आकाश गंगा के जल से भरे हुए शंख से - पीछे वेद पंडितों की पंच-सूक्तियों के पारायण करते, स्वामी के परतत्व सूचक किरीट पर अभिषेक प्रक्रिया आरंभ करते हैं। उसके बाद दो कड़ाहे गोक्षीर से, दो कड़ाहे सोने के कुँए के पानी से स्वामी का लगभग एक घंटे भर के लिए, वैखानस आगमयुक्त विधान से अत्यद्भुत ढंग से अभिषेक किया जाता है।

तदुपरांत 'परिमल' सुगंध द्रव्य को लेकर श्रीनिवास के चरणों से लेकर किरीट तक अत्यंत भक्ति के साथ लगाकर 'मंजन' (विविध सुगंध द्रव्यों को शरीर पर लेपन) करते हैं।

तदुपरांत श्रीनिवास के वक्षःस्थल पर स्थित लक्ष्मी का हरिद्राभिषेक किया जाता है। (सुहागिन माता जी के लिए हल्दी अत्यंत मुख्य परिमल पदार्थ है) बाद में पुनः एक बार शुद्ध जल से स्नान कराया जाता है। उस अभिषेक जल को अर्चक स्वामी भक्तों पर 'पूतो भव' कहते हुए छिडकाते हैं।

तब तक वेद पारायाण पूरा होकर जियंगार, अध्यापक द्राविड वेद नीराट्टम के 10 पाशुरों का पठन करते हैं।

इस समय को परदा डालकर, शुद्ध वस्त्र से स्वामी के 'स्नान शाटिनी' को हटाकर श्री श्रीनिवास दिव्य शरीर के गीलेपन को अत्यंत सुकुमार ढंग से पोंछते हैं। श्रीनिवास के सिर पर एक शुद्ध वस्त्र को पहनाते हैं। किरीट पहनाने से पहले, स्वामी के सिर पर यह वस्त्र पहनाया जाता है ताकि मुकुट स्वामी के सिर को न चुभे। जियंगार हथपंखे से हवा करते अर्चक स्वामीगण 24 हाथवाला रेशमी धोती अति रमणीय ढंग से पहनाते हैं। 12 हाथोंवाले वस्त्र को कंधे पर डालते हैं। कपूर, कस्तूरी को मिलाकर स्वामी के चेहरे पर तिरुनाम धारण करते हैं। इसे 'नीलतिरुमणिकापु' (ऊर्ध्व पुंड्र) कहते हैं।

तब तक दिव्यप्रबंध गान पूरा हो जाता है। स्वामी को गो नवनीत (माखन), शक्कर चढाकर आखिर मुखवास (तांबूल) समर्पित करते हैं। सोने के नीराजन पात्र में स्वामी को कर्पूर आरती देते हुए यवनिका हटाते हैं।

तब तक स्वामी के दर्शन के लिए प्रतीक्षा करनेवाले भक्तों का हृदय स्वामी के दिव्य दर्शन से पुलकित हो जाता है। एक ओर परवशता, एक ओर आनंद, दूसरी ओर कुछ और दर्शन करने का उत्साह - ऐसे भावों के उदय से स्वामी के स्वतःसिद्ध दिव्य सौंदर्य के दर्शन से प्राप्त चेतना से दैवत्व प्राप्त भक्तों की तरह बिना पलके झेंपे, श्रीनिवास का दर्शन करते रहते हैं। श्रीनिवास के दर्शन के अमृत भावानुभूति को प्राप्त करके धन्य होने के भाव को मन में लिये, भक्तगण चरणामृत ग्रहण करके बाहर निकल आते हैं।

अलंकार सेवा - अमूल्य आभरण :

'कंटि कंटि निलपु चक्कनि मेनुदंडमु' नामक संकीर्तन में अन्नमय्या ने स्वामी के आभरणों का वर्णन किया है।

इन आभरणों एवं वस्त्रों के बारे में श्रीमान पी.वी.आर. के. प्रसाद ने 'तिरुमल लीलामृत' ग्रंथ में लिखा कुछ विषय बहुत उल्लेखनीय है।

''तोमाला हो, अर्चना हो, सब से मुख्य दर्शनीय वस्तुएँ, स्वामी को समर्पित अलंकार के आभरण ही हैं। गुरु, शुक्रवार के दिन कुछ घंटों को छोडकर हफ्ते के बाकी दिनों में हमेशा देखने के लिए केवल स्वामी का चेहरा ही दिखाई देती है। वह भी पूरी तरह नहीं है। कपूर तिलक स्वामी के नेत्रों एवं ललाट भाग को ढकते हैं और चेहरे के कुछ ही भाग को भक्तगण देख सकते हैं। बाकी मूर्ति पादपद्मों समेत पूरा आभरणों से तथा रेशमी वस्त्रों से ढका रहता है।'' (पृष्ठः 13)

इस रूप में स्वामी के दर्शन में मुख्य रूप से आभूषण ही दिखाई देते हैं। लेकिन इनके बारे में अधिकांश लोगों को मालूम नहीं है। इसलिए इनके बारे में कुछ विवरण देना उचित है।

सुवर्णपद्म पीठ, सुवर्णपाद, नूपुर (पैरों में पहननेवाली छोटी छोटी घंटिकाएँ), पागड, कांची गुण (कमर में पहननेवाले धागे), उदरबंध (नागफण से बना कमर बंध), दशावतार रशन (दशावतार प्रतिमाओं से छोटी छोटी घंटिकाओं से बनी मेखला/'मोलत्राडु'), छोटे बडे कंठाभरण, बाघनख हार, गोपुहारओं (नाभिपर्यंत 5 परतों वाला हार), सुवर्ण यज्ञोपवीत, साधारण यज्ञोपवीत, तुलसीपत्र हार, चतुर्भुज लक्ष्मी हार, अष्टोत्तर शतनाम हार, सहस्रनाम हार, सूर्य कठारी, कटिहस्त, कंकण,

नागाभरण, भुजकीर्त, कर्णफूल, चक्र, शंख, किरीट - ये सभी आभरण श्री श्रीनिवास को प्रत्येक दिन पहनाते हैं।

विशेष दिनों में रत्न-किरीट, बडा हरिताश्म वज्र, रत्नाभरण, मकरकंठी, सुवर्ण पीतांबर शुक्रवार के दिन स्वामी को इन आभरणों को पहनाने के बाद श्रीसूक्त से तथा भूसूक्त से स्वामी की वक्षःस्थल लक्ष्मी की और भूदेवी की (दाएँ तथा बाएँ रहनेवाली) आराधना की जाती है।

इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी के रमणीय लक्षण माताओं की शोभा के कारण प्राप्त होने का रहस्य खुल जाता है। इसलिए पहचान लेना चाहिए कि श्री और भू समेत श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी जगत्कुटुंबी के रूप में आनंदनिलय में बसे हुए हैं। यह पूरा जगत उन्हीं का परिवार है। इस परिवार के लिए उनके द्वारा मंदिर के बाहर स्वीकारे जाने वाली सेवायें ही ये उत्सव हैं।

अध्याय - 4
उत्सव दर्शन

श्री श्रीनिवास नित्योत्सव प्रिय हैं। प्रत्येक दिन स्वामी का मंदिर नित्य कल्याण - हरिततोरण से सदा एक कल्याण शोभा के साथ विराजमान दिखाई देता है। भक्त रक्षणोत्सक स्वामी, हम जैसे पामरों के द्वारा अलंकृत होकर, हमसे समर्पित हर भेंट को सहर्ष स्वीकार करके हम पर अनुग्रह करते हैं। इसीलिए मंदिर में प्रत्येक दिन मूल विराट को समय-समय पर विभिन्न सेवायें करने के बावजूद प्रत्येक दिन कोई न कोई उत्सव मूर्तियों को समर्पित किया जाता है।

इन उत्सवों में प्रयुक्त मूर्तियों को उत्सव मूर्ति कहते हैं। 'मलयप्प स्वामी' इस स्वामी (उत्सव मूर्ति) का एक विशेष नाम है। इन्हीं के लिए सभी उत्सव समर्पित होते हैं।

इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय उत्सव है कल्याणोत्सव जो प्रत्येक दिन मनाया जाता है। श्री श्रीनिवास का अवतार पद्मावती के साथ कल्याण प्रयोजन से जुडा रहने के कारण श्रीनिवास कल्याण मूर्ति के रूप में ही लोकप्रिय हुए हैं। अपने बच्चों का विवाह होने के लिए मनौतियाँ माँगकर लोग स्वामी का कल्याणोत्सव मनाते हैं। आज श्रीवेङ्कटेश्वर भक्ति चॉनल की स्थापना के बाद 'कल्याणोत्सव' कार्यक्रम दुनिया के कोने कोने में प्रत्येक घर में संपन्न हो रहा है। वैदिक वैखानस आगम शास्त्र विधान के अनुसार होम, अंकुरार्पण, महा संकल्प, दीक्षाकंकण धारण, यवनिका डालना, कन्यादान, मंगलसूत्र धारण, लाजहोमादि तथा अंत में अक्षतारोपण कार्यक्रम किए जाते हैं। कल्याणोत्सव के बीच में गोदा देवी

और श्रीरंग स्वामी के विवाह के संदर्भ में संपन्न 'वारणमाइरम' नामक गोदादेवी विरचित पाशुर का पठन करते हुए आमने सामने नारियल दौडाने का एक द्रविड संप्रदाय का अनुसरण भी किया जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि लगभग तीन घंटे श्रीनिवास और माताओं को बिना पलके झेंपे दर्शन करते हुए, अपने बच्चों का ही विवाह मानो मनाया जा रहा हो, ऐसा आनंद हजारों दंपति अनुभव करते हैं, यह दृश्य अत्यंत कमनीय लगता है। हम वैदिक धर्म का पालन करते हैं। यह धर्म एक धार्मिक जीवन को त्रिकरण रूप में अमल करने का संप्रदाय रखता है। इस जीवन में अत्यंत प्रधान धर्म विवाह बंधन है और उससे प्राप्त होनेवाला दाम्पत्य जीवन भी धर्म संबद्ध है। श्री श्रीनिवास का कल्याणोत्सव इन दोनों धर्मो का शिक्षण देता है।

इसलिए श्रीनिवास के मंदिर में पति-पत्नी दोनों को मिलकर सेवाएँ करना चाहिए, ऐसा एक नियम है। इसीलिए सेवाकर्ताओं को 'उभयदार' कहकर पुकारते हैं। उभय का मतलब दम्पति है। हमें समझ लेना चाहिए कि इस उत्सव के द्वारा श्रीनिवास स्वामी माताओं से मिलकर दृढ एवं सुपुष्ट हिंदू कल्याण संस्कृति का प्रचार कर रहे हैं।

इतना ही नहीं, श्रीनिवास जजमान के रूप में प्रातःकाल से लेकर अपनी पूजा-अर्चनादि करनेवाले अर्चक परिचारकों का सत्कार भी करते रहते हैं। इसे बहुत से लोग नहीं जानते हैं।

प्रातःकाल में दरबार होने के बाद, श्री श्रीनिवास की ओर से अर्चक स्वामी को फल-तांबूल, दक्षिणा, चावल आदि को दान के रूप में दिया जाता है। अर्चक स्वामी दान को स्वीकार करके श्रीनिवास को 'नित्यैश्वर्योभव' कहकर मंगलाशासन करते हुए पादपद्मों में नमस्कार करते हैं।

उसी रूप में कल्याणोत्सव और अन्य उत्सव के संपन्न होने पर, अर्चक स्वामियों का दरबारी मर्यादाओं के साथ फल-तांबूल, दक्षिणा के रूप में स्वामी की ओर से सत्कार होता है। यही स्वामी के द्वारा निभाये जानेवाला जजमानी धर्म है। उन सेवाओं के दर्शन करते समय और इन उत्सवों में भाग लेते समय हमें हिंदू धार्मिक जीवन के इन धर्म सूक्ष्मों को पहचानना होता है।

प्राचीन काल में विष्णुचित्त जी ने अपनी पुत्री गोदादेवी को श्री रंगेश्वर को समर्पित करके ससुर बनकर 'पल्लांडु पल्लांडु पल्लाइरित्तांडु पलुकोडि नूराइरम' कहते हुए अशीर्वाद दिया। (अर्थात् हे स्वामी! तुम कई करोड सौ वर्षों तक इसी रूप में ऐश्वर्य युक्त होकर उज्ज्वल रहो, यह मेरा मंगलाशासन है।) इतिहास बताता है कि लगभग इसी रूप में अन्नमाचार्य जी ने भी माताओं का पक्ष लेकर, पीहर की ओर की मर्यादा का पालन करते हुए श्रीनिवास के कल्याणोत्सव का आरंभ किया। अन्नमय्या के वंशज आज भी इस कैंकर्य को निभा रहे हैं।

इस संदर्भ में इस परमार्थ को पहचानना पर्याप्त है कि श्रीनिवास की यात्रा, क्षेत्र निवास, दर्शन, सेवा आदि सभी स्वामी के साथ 'बंधुत्व' बढाने के बहाने ही हैं। स्वामी के पास हमें कमाने के लिए नहीं आना चाहिए, बल्कि स्वामी को ही अपनी संपदा देकर सेवा करने के लिए आना चाहिए। ताल्लपाक वंशजों के द्वारा की गयी 'सेवा', श्रीकृष्णदेवरायलु के द्वारा की गयी 'सेवा' सेवा है। इसीलिए इतने वैभवोन्नत मंदिर के उत्सव-संप्रदाय चल पडे हैं। वे सभी आज भी चालू हैं।

'कल्याण' से संबद्ध वसंतोत्सव, डोलोत्सव, ऊंजल सेवा, प्रणयकलहोत्सव, पालकी में जुलूस निकालना, एकांत सेवा - आदि सभी

नये दम्पतियों के लिए किए जानेवाले संस्कार ही हैं। इसीलिए जगद्धर्ता श्रीनिवास के 'श्री वारु' (तेलुगु में 'श्री' का मतलब लक्ष्मी है। वारु का मतलब आदरवाचक शब्द है जो 'जी' का समनार्थी है। प्रस्तुत अनुवाद में जहाँ मूल में 'श्रीवारु' शब्द का प्रयोग हुआ है उसके स्थान पर 'श्रीनिवास' शब्द का प्रयोग किया गया है। पाठक इस परिवर्तन को ध्यान दें। प्रस्तुत संदर्भ में 'वारु' का अर्थ पति है। तेलुगु प्रदेश में 'श्रीवारु' का एक अर्थ पति के रूप में लिया जाता है। आज देवस्थानम् में श्रीवेङ्कटेश्वर नाम से अधिक 'श्रीवारु' शब्द ही अधिक लोकप्रिय हुआ है।) अकेले ही पुरुष हैं। बाकी हम सब, सृष्टि का प्रत्येक प्राणी स्त्री रूप हैं। इसी दृष्टि से स्वामी की सेवा करनी चाहिए। कर्ता और भोक्ता दोनों केवल जनार्दन ही हैं। सकल सृष्टि उनकी भोग वस्तु है। उसी रूप में यह चराचर जगत उनका क्रीडा-स्थल है। हम उनके हाथ की कठपुतलियाँ हैं। ऐसे ही भाव के साथ स्वामी की महामहिमा को पहचानना चाहिए और समझ लेना चाहिए। ब्रह्मोत्सव का उद्देश्य भी यही है ।

ब्रह्मोत्सव - दर्शन :

पुराण कथन के अनुसार श्रीनिवास को ब्रह्म देव ने ही कई हजारों वर्ष पहले प्रथम उत्सव मनाये थे।

प्रति वर्ष शरन्नवरात्री के समय (आगमोक्ति के अनुसार कन्या मास) श्रवणा नक्षत्र में 'चक्र स्नान' के साथ संपन्न होने के रूप में नौ दिनों के लिए ब्रह्मोत्सव मनाये जाते हैं।

इतिहास हमें स्पष्ट करता है कि इन ब्रह्मोत्सवों को राजा, पालेगाल्लु (साहूकार), कई धनी लोगों ने किया था। लेकिन आज देवस्थानम् के लोग ही इन उत्सवों को मना रहे हैं।

प्राचीन काल में क्षेत्र दर्शन करने के लिए आने-जाने में जल्दबाजी नहीं किया करते थे। धनी हो या गरीब, श्री श्रीनिवास की सेवा बडी शांति के साथ किया करते थे। बैल गाडियों में धान्यादि भरकर अन्य सामान के साथ जाकर वहाँ कई दिन रहकर यथा विधान अपने आचार-संप्रदाय के बारे में प्रबोध करनेवाले गुरुओं के साथ जाकर (इसीलिए उनके नाम से आज मठ बने हैं) संप्रदायानुसार स्वामी की सेवा करके लौटते थे। जियंगार स्वामी, अर्चक स्वामी, परिचारक आदि को देव प्रतिनिधियों के रूप में मानकर गौरव दिया करते थे। इसके साथ-साथ उनकी आज्ञा से ही तिरुमल पहाड उतर आते थे। अर्चक स्वामी श्रीहरी के प्रतिरूप हैं। चलनेवाले भगवान ही अर्चक हैं। किसी एक जमाने में हर दिन की वाहन सेवा उभयदार किया करते थे। कालक्रम में अन्नमय्या के जमाने तक ही ब्रह्मोत्सव अतिवैभव पूर्ण ढंग से मनाये जाते थे, - 'एंड कानी, वानकानी एमैना कानी, कोंडलरायुडे मा कुल दैवमु' इस प्रकार के भाव से कई हजारों भक्त तिरुमल की यात्रा में आते थे - इसका विवरण इस कीर्तन से पता चलता है।

ताल्लपाक अन्नमय्या ने एक संकीर्तन में ब्रह्मोत्सवों में संपन्न होनेवाली वाहन सेवाओं का वर्णन किया है।

पल्लवि : तिरुवीधुल मेरिसी - देवदेवुडु
गरिमल मिंचिन सिं - गारमुलतोडनु ।। तिरु ।।

चरण : तिरुदंडेलपै नेगे - देवुडिदे तोलिनाडु
सिरुल रेंडवनाडु - शेषुनिमीद
मुरिपेन मूडोनाडु - मुत्यालपंदिरि क्रिंद
पोरि नालुगोनाडु - पुव्वुकोविललोनु ।। तिरु ।।

गक्कन ऐदवनाडु - गरुडुनिमीद
एक्केनु आरवनाडु - एनुगुमीद
चोक्कमै एडवनाडु - सूर्यप्रभलोननु
इक्कुव तेरुनु गुर्र - मेनिमिदोनाडु ।। तिरु ।।

कनकपुटंदलमु - कदिसि तोमिदोनाडु
पेनचि पदोनाडु - पेंड्लि पीट
एनसि श्रीवेङ्कटेशु - डिंति अलमेल्मंगतो
वनितलनडुमनु - वाहनाल मीदनु ।। तिरु ।।

(अर्थात् स्वामी खूब श्रृंगार करके मंदिर की तिरुवीथियों में विहार कर रहे हैं। पहले दिन श्रीलक्ष्मी समेत, दूसरे दिन शेष वाहन पर, तीसरे दिन मुत्याल 'पंदिरि' (मोती वितान) पर, चौथे दिन फूल मंदिर में, पांचवें दिन गरुड वाहन पर, छठे दिन गज वाहन पर, सातवें दिन सूर्य प्रभा वाहन पर, आठवें दिन अश्ववाहन पर, नवें दिन सोने के रथ पर, दसवें दिन विवाह के लिए तैयार दूल्हे के रूप में स्वामी अपनी देवेरी श्री अलमेल्मंगा समेत मंदिर की तिरुवीथियों में विहार कर रहे हैं।)

ये सारी वाहन सेवाएँ थोडी परिवर्तनों के साथ आज भी चल रही है। दसवें दिन चलाई जानेवाली सेवा, अकेला 'कल्याणोत्सव' ही नहीं है। अंतिम सेवा 'चक्रस्नान' है। गरुड ध्वजारोहण से आरंभ होकर चक्रस्नान के साथ संपन्न होनेवाले इन उत्सवों में भाग लेनेवाले भक्त विविध युगों में विविध देवताओं के मध्य विहार करने की अनुभूति प्राप्त करते हैं। प्रत्येक वाहन के पीछे श्रीनिवास की लीलाएँ ही गोचर होती हैं। श्री महाविष्णु का वैभव आंखों के सामने तैरने लगती हैं।

एक मुख्य विषय हमें प्रधान रूप से जानना चाहिए। श्री श्रीनिवास राजाधिराज हैं, चक्रवर्ती हैं। इसीलिए सर्वभूपाल उनकी पालकी ढोनेवाले ही हैं। उसी रूप में बना है सर्वभूपाल वाहन सेवा। राजा केवल मनुष्यों के लिए ही प्रभु हैं। उन राजाओं का सृजन करके उनके भाग्य चक्र को घुमा सकनेवाले एक और महाराजा हैं। वे ही श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी जी हैं।

पात्रदानोत्सव प्रथित वेङ्कटराय
धात्रीश कामितार्थप्रदाय
गोत्रभिन्मणिरुचिरगात्राय
रविचंद्रनेत्राय शेषाद्रिनिलयाय ते नमो।।

(नारायणाय नमो)

जिसे जो प्रदान करना होता है, उसे देना ही पात्र दानोत्सव है। ब्रह्मोत्सवों में भाग लेनेवाले प्रत्येक को श्री श्रीनिवास की कृपा इसी रूप में प्राप्त होती है। कल्पना कीजिए कि कितने ही करोड लोग स्वामी के द्वारा इस रूप में 'जीवन वैभव' नामक इस दान को प्राप्त कर रहे हैं। अपना वैभव अपना नहीं है। वह श्रीनिवास के द्वारा प्रदत्त है। इसलिए उसे पुनः स्वामी को ही समर्पित करना होता है। इसलिए धात्रीश (राजा लोग) भी स्वामी से ही कामनाएँ माँगते थे। उस स्वामी की कृपा के लिए श्रीकृष्ण देवराय भी अपनी पत्नियों के साथ विनम्रतापूर्वक हाथ जोडकर नमस्कार मुद्रा में खडे रहकर मंदिर की पडिकावली प्रांगण में दिखाई देते हैं।

सात बार यथाशीघ्र श्रीनिवास के दर्शन करके अनेक सुवर्ण भेंटों समेत, धन राशियों को तुला के द्वारा समर्पित करनेवाले श्रीकृष्ण देवराय ने कहीं भी किसी भी शासन में इसे लिखवाया नहीं है।

'समर्पिसलु चित्तस्थरादरु' (समर्पण करने के लिए संकल्प किया है) केवल इतना ही शासन में लिखा हुआ है। उसी रूप में क्षेत्र यात्राएँ भी हम नहीं करते हैं। अगर हमारा संकल्प अच्छा है तो स्वामी ही सभी प्रकार की व्यवस्था करके चिडिया के पैर में धागा बांधकर खींचने की भाँति अपने भक्तों को स्वामी स्वयं अपने पास खींच लेते हैं। सेवाएँ करवा लेते हैं। बदले में उन पर अपार कृपा बरसाते हैं। उसी रूप में श्रीनिवास की सेवा करने के कारण ही रायल जी सत्कीर्ति प्राप्त करके शाश्वत रूप से श्रीनिवास के मंदिर में स्वामी का परिजन बन गए हैं। वास्तव में उनकी सेवा से प्रसन्न होकर श्रीनिवास ने इस फल के साथ अनुग्रह किया है।

इसलिए 'उत्सव दर्शन' - के अंत में एक और बार समीक्षा करने से - मंदिर के अंदरवाले स्वामी भक्तों को दर्शन प्रदान करने के लिए ही उत्सवों का नाम लेकर बाहर आते हैं। - इसका परमार्थ यही है।

इसलिए महात्मा कहते हैं: 'It is not the darshan you get : it is the darshan He gives' मतलब दर्शन हम नहीं कर रहे हैं। बल्कि स्वामी हम पर दया करके दर्शन दे रहे हैं। इस भावना से मनुष्य में 'विनय' की स्फुलिंग फूटती है। विनयशील मनुष्य ही धर्म का आचरण कर सकता है।

श्रीपद्मावती माताजी के दर्शन से ही 'यात्रा' पूरी होती है:

आज तिरुचानूर में जिसका दर्शन मिलता है, उस माताजी को पद्मावती देवी कहकर पुकारते हैं। पद्मपुराण के अनुसार लक्ष्मी देवी ने कलियुग में अपने दो रूपों को प्रकट किया है - एक 'व्यूह लक्ष्मी' के

रूप में श्रीनिवास के वक्षःस्थल पर है तो दूसरा 'वीर लक्ष्मी' के रूप में तिरुचानूर में विराजमान है।

वह किस प्रकार के प्राणियों पर कृपावृष्टि बरसाती है, संपदा देती है, उसके बारे में व्यूह लक्ष्मी देवी ने श्रीनिवास से स्वयं कहा है -

''धन्यात्मा ! नी तोड दब्बराडगरादु
चेप्पेद निप्पुडे सिद्दमुगनु
महिमयंदु दानधर्मपरोपकारमुल
चेसि नी कर्पणसेयुचुन्न
वारिकि धनधान्यवरसंपदलनित्तु
नंदुलो लोभपापात्मुलैन
नरुल धनंबुलु नानाट नशिइंप
जेयुदु, नदिवृद्धि जेयनु''

(अर्थात् हे धन्यात्मा! तुम से झूठ नहीं बोलना चाहिए। अभी सच बोलूँगी। इस धरती पर दान, धर्म, परोपकार करके तुम्हें समर्पित करनेवाले उनको मैं संपदा दूंगी। लोभी, पाप करनेवाले लोगों की संपदाओं को दिन ब दिन नष्ट पहुँचाऊँगी।)

ऐसा माताजी ने स्पष्ट कहा है। इसीलिए, सत्कर्म से कमाए गए धन को ही स्वामी को 'भेंट' के रूप में समर्पित करना चाहिए। तभी माताजी हमारी संपदाओं में वृद्धि करेंगी।

पुराणों के अनुसार 'वीर लक्ष्मी' अर्थात् 'श्रीनिवास' (महावीर - जगत्पालक) को अपने हृदय में बसानेवाली लक्ष्मी है। इसीलिए स्वामी से समतुल्य चतुर्भुजाओं के साथ, महागंभीर मूर्ति के रूप में जगन्माता के

रूप में माताजी 'तिरुचानूर' में पांचरात्रागम के अनुसार सेवाएं प्राप्त करते प्रकाशवान हैं। इसीलिए अवश्य माताजी का दर्शन करके तिरुमल यात्रा को सफल बना लीजिए।

अध्याय - 5
दर्शन की सफलता

श्रीनिवास के दर्शन की सफलता केवल उस समय ही सफल कही जाती है जब स्वामी के अनुग्रह की प्राप्ति करने के लिए उचित रीति में शरीर और मन को नियंत्रण में रखकर प्रशांत चित्त से स्वामी की सेवा करते हैं। पुण्य के लिए ही स्वामी का दर्शन करना चाहिए न कि कुछ और पाप बढाने के लिए (यानी दर्शन से पाप लुप्त हो जायेंगे, ऐसा मानकर, पापकर्म करना)।

आज के मनुष्य के स्वभाव में 'कलि' का लक्षण पूर्ण रूप से भरा है। इसीलिए इसे कलियुग कहकर पुकारा गया है। कलियुग में मनुष्य किस प्रकार के होते हैं श्रीमद्भागवत में कहा गया है:

अलसुलु मंदबुद्धिबलु लल्पतरायुवु लुग्ररोग सम्
कलितुलु मंदभाग्युलु सुकर्ममु लेव्वियु जेयजालरी
कलियुगमंदु मानवुलु कावुन नेय्यदि सर्वसौख्यमै
यलवडु नेमिटम् बोडमु नात्मकु शांति मर्नींद्र चेप्पवे। (1-44)

कलियुग में मनुष्य आलसी स्वभाववाले हैं। मंदबुद्धि वाले हैं, मंदबल के लोग हैं, बुद्धि में भी स्थूल लोग है। बल में भी स्थूलत्व ही है। यानी जितना शारीरिक बल है उतना बौद्धिक बल का न होना। अल्प बुद्धिवाले हैं, ऐसा अर्थ है। वे अल्पायु के लोग भी हैं। पहले के युगों की तरह कई सौ वर्षों तक जिंदा रहनेवाले नहीं है। इतनी चिकित्सा सुविधाओं के बावजूद 80 वर्ष जिंदा रहना मुश्किल है। उसी रूप में

उग्ररोग संकलित भी हैं। कलिकाल भयानक रोग घेरनेवाला समय है। इसके बावजूद ये भाग्यशाली कदापि नहीं है बल्कि मंदभाग्य हैं। यहाँ भाग्य का मतलब भगवत कृपा है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी दौर्भाग्य से जीते मरते रहते हैं। मरते जीते रहते हैं। धनी हो या निर्धन यही क्रम है। इसीलिए किसी भी प्रकार के पुण्य कार्य नहीं कर पाते हैं। ऐसा हो तो आत्मा को शांति कैसे मिलेगी? ऐसा कलियुग के आंरभ में ही व्यास महर्षि प्रश्न करके - भागवत कथा श्रवण ही सुःख प्रदायिनी है - ऐसा समाधान दिया है।

आज श्रीनिवास के दर्शन करने में सभी एक प्रकार की 'जल्दी' दिखा रहे हैं। यह 'त्वर' प्रवृत्ति कलिमनुष्यों का दुर्भाग्य लक्षण है। इसे समझ लेने पर यह बात समझ में आ जाएगी कि इतनी समस्याएँ स्वयं क्यों पैदा कर ले रहा है।

पुण्यस्य फलमिच्छंति - पुण्यम् नेच्छंति मानवाः
न पापफल मिच्छंति - पापम कुर्वंति यत्नतः

- बुजुर्गो ने कहा है।

कलिमनुष्य पुण्य से प्राप्त फल-प्राप्ति चाहते हैं। लेकिन वे पुण्य कार्य करने की इच्छा नहीं रखते हैं। पाप से प्राप्त फल प्राप्ति कोई नहीं चाहता है। लेकिन अपने प्रयत्न में पाप ही अधिक करते रहते हैं।

उन पापों में प्रप्रथम पाप अधिक से अधिक धन कमाने के मार्गों का अनुसरण करना है। दूसरा पाप पडोसी का नुकसान होने पर भी केवल अपने स्वार्थ (अहंकार) के बारे में सोचना। सब मेरे लिए ही चाहिए (अपने पर ही मोह) - ये दोनों विचार आज के मनुष्य के मन में

जड़वत् जम गए हैं। इनके कारण ही आज मनुष्य के द्वारा नहीं किए जानेवाला कोई अपराध नहीं बचा है।

इन सब को श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी मिटायेंगे - वे हम से ब्याज (तेलुगु में वड्डी) लेकर अपने कार्य पूरा करेंगे, ऐसे अज्ञान से जुडे मानसिक भाव आधुनिक मनुष्य में समा गया है। स्वामी के द्वारा जन जन के पापों को मिटाने का यह अर्थ लगाया गया है।

संस्कृत में 'वें' शब्द के लिए पाप के अतिरिक्त 'मोक्ष' और 'अमृत' अर्थ भी हैं। 'कट' का मतलब भविष्योत्तर पुराण में नाश करनेवाला अर्थ है, ऐसा पहले ही बताया जा चुका है। वामन और वराहादि पुराणों में 'कट' का अर्थ ऐश्वर्य भी है।

यह पर्वत मोक्ष और ऐश्वर्य दोनों देनेवाला होने के कारण ही इस का नाम वेङ्कटाचल पडा है। इन दोनों अर्थों में सांगत्य भी है। समन्वय कर लेने में बडी कठिनाई नहीं है।

जब तक पाप होंगे तब तक ज्ञान प्राप्ति नहीं होगी। ज्ञान प्राप्त नहीं हो तो मोक्ष नहीं मिलेगा। श्रीमध्वाचार्य के ब्रह्मसूत्र भाष्य के लिए जयतीर्थ ने नाम टीका लिखते समय पाप और ज्ञान के बीच के संबंधों पर प्रकाश डाला है।

अपने पास पाप रहने तक मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना करना कठिन है। शास्त्र पढने का ध्यान भी नहीं रहेगा। किसी कारण से पढने पर भी समझ में नहीं आयेगा। फिर भी कुछ संदर्भों में समझ में आने पर भी अनुसरण करने के लिए और दोनों को जोडने के लिए मन नहीं चाहता है। आचरण करने से ही समझ में आनेवाला वह ज्ञान प्रयोजनकारी सिद्ध नहीं होता।

इस रूप में ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रतिबंधक आते रहते हैं। पापों को मिटाने से ये प्रतिबंधक भी दूर होकर साधना निर्बाध बन जाती है।

उसी रूप में पापों के रहने तक गरीबी या धन के रहने से भी उनको भोगने की संभावना नहीं होती है। आज ऐश्वर्य पाने के लिए तथा उसका भोग करने के लिए पापों को मिटाना चाहिए। पापों के मिटने से ही ज्ञान, ऐश्वर्य और मोक्ष प्राप्त होते हैं।

'नान्यः पंथा अयनाय विद्यते' यह 'पुरुष सूक्त' की उक्ति है। ज्ञान के कारण ही मोक्ष संभव है, मात्र कर्म से संभव नहीं होता। (पृष्ठः 104 - 105)।

* * *

इसलिए अपने पाप से प्राप्त धन और सोने को हुंडी में डालने मात्र से पाप नहीं मिटेंगे। भक्त को ऐसा सोचना चाहिए-दुबारा मुझसे पाप मत करवाइए। इस प्रकार के पश्चात्ताप से तिरुमल की यात्रा करना ही उचित रीति है। इसी मनोभाव से यात्रा पर निकलना चाहिए।

1. पश्चात्ताप के साथ पापों को मिटाने के लिए तीव्र वेदना से तिरुमल पर तीर्थों में स्नान करते समय संकल्प धारण करके विधि-विधानों से स्नान करना।

2. अनेक भक्तों ने इन विधि-विधानों का अनुसरण करके इस रूप में स्नान करके अपना उद्धार किया है, उन ग्रंथों को पढकर और समझकर स्नान करना।

3. क्षेत्र दर्शन के लिए आते समय इन सबकी जानकारी रखनेवाले किसी बुजुर्ग को, वृद्ध को, पंडित को साथ ले आना होगा। उनकी

सहायता से ऐसे ग्रंथों का पठन करके यात्रा के विधि-विधानों को जानना भी आवश्यक है। (श्री पी.वी.आर.के. प्रसाद जी का 'तिरुमल लीलामृतम्')

* * *

इन तीनों कार्यों को पहाड पर करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। ऐसे भाव से 2, 3 सालों में एक बार स्वामी का दर्शन करना पर्याप्त है। ऐसा दर्शन विधि-विधानों के साथ करके अपने जीवन की गति को बदलनेवाला जैसा होना चाहिए।

'नीवु कावलेनन्न रिक्कु धनपतिनिगा
भावुकंबुग रक्कु भक्तुनिग जेतुवो गोविंद'

- ऐसा कहते हुए एक भक्त श्रेष्ठ ने इस रहस्य का ही कीर्तन किया है। भक्त बनकर दर्शन करने से उससे ज्ञान और उससे 'विमुक्ति' (प्रशांतता) अवश्य प्राप्त होगी। श्रीनिवास के द्वारा दिए जानेवाला ऐश्वर्य और अमृतत्व वही है। वह धन से या कर्म से नहीं मिलता है।

* * *

अन्यक्षेत्रे कृतम् पापम् पुण्य क्षेत्रे विनश्यति
पुण्यक्षेत्रे कृतम् नैव ब्रह्मलोकेऽपि नश्यति

- एक प्रसिद्ध श्लोक का उल्लेख हमारे बुजुर्ग करते रहते हैं। इस श्लोक के अर्थ को आज हम सबको अवश्य जानना चाहिए। अन्य प्रदेशों में किए जानेवाले पाप, पुण्य क्षेत्रों में करनेवाली भगवान की सेवा से मिट जाते हैं। लेकिन पुण्य क्षेत्र में ही पाप करने से वह ब्रह्म लोक में भी

नहीं मिटेगाा। ऐसा इसका भाव है। भगवान की संपदा का अपहरण करना, भगवान के धन का दुरुपयोग करना महापाप है, ऐसा बुजुर्ग लोगों ने नियम बनाया है।

न विषम् विषमित्याहुः
दैवस्वम् विषमुच्यते
विषमेकाकिनम् हंति
दैवस्वम् पुत्रप्रौत्रकम

विष विष नहीं है। भगवान की संपदा ही सच्चे अर्थों में विष है। विष केवल पीनेवाले को ही मारता है। लेकिन भगवान की संपदा न केवल खानेवाले को, उसके पुत्र को तथा उसके पौत्र को - उसके पूरे वंश को मिटा देती है।

'दैवस्वम पुत्र पौत्रकम' के रूप में शासनों में व्यक्त भाव का यही अर्थ है। प्राचीन लोग भगवान से संबंधित संपदा भले ही वह जमीन हो या जायदाद भगवान के धन, कनक, वस्तु, वाहन आदि को विष के रूप में देखते थे। इसलिए वे संपदाएँ आज भी सुरक्षित हैं। लेकिन आज के मनुष्य ने मंदिर को तथा उसके अंदरवाले भगवान को भी खाने का मनोभाव विकसित किया। मंदिर की क्या संस्कृति होती है? नहीं जानने के कारण ही यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

इसे लांघकर मंदिर के 'संस्कार' को हमें बचाना चाहिए। दर्शन को अगर सफल बनाना चाहेंगे तो भगवान को लेकर अब तक व्यक्त सभी विषयों को जानने की आवश्यकता है।

पुण्य करते समय कम से कम थोडा तो मालूम हो जाता है कि यह पुण्य है। लेकिन पाप करते समय ऐसा बोध नहीं होता है। यह माया लक्षण पाप में है।

इसलिए पुण्य क्षेत्र की यात्रा करने पर प्राचीन काल में क्या किया करते थे कुछ अन्य ग्रंथों में विवरण है। उदाहरण के लिए डॉ. दीवि श्रीनिवासाचार्य ने अपनी 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यमु' में कई अद्भुत विषयों का उल्लेख किया है। उन्होंने दामेर चिनवेंकटराय कवि की 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यमु' में वर्णित विवरणों के आधार पर ऐसा है।

उन दिनों में तिरुमल क्षेत्र एक प्रसिद्ध 'तपोभूमि' था। कहा जाता है कि इसीलिए अनेक उपासकों ने इस पुण्य क्षेत्र में रहते हुए अपने तप को तथा उपासना को आगे बढाया है।

कुछ अष्टाक्षरी मंत्र का पारायण करते थे। गोपाल बीजोपासक कुछ थे। जगन्नाथ उपासक कुछ थे। तार मंत्रोपासक, त्रिविक्रमोपासक, द्वादशाक्षरी मंत्रोपासक, नृसिंहोपासक, प्रणवोद्धारक, मुक्ति बीजोपासक, वराहा मंत्रोपासक, श्रीमन्नारायणोपसक, श्रीहरी उपासक, हरि सौम्य प्रतिबिंब उपासक - इस रूप में कई संप्रदायों से संबंधित महापुरुष वहाँ स्वामी का भिन्न स्तरों पर, भिन्न रूपों के साथ भिन्न प्रयोजनों की इच्छा से उपासना करते थे।

इनके तपो विधि - विधान विलक्षण और विशिष्ट हुआ करते थे। कुछ अंगुष्टाग्रस्थिति में रहनेवाले (अंगूठे के बल पर खडे रहनेवाले) कुछ अक्षरमालाधारी, कुछ एक पाद संस्थिति में रहनेवाले, कुछ और कमलहोमतत्पर, कुछ काषायवस्त्र धारण करनेवाले कुछ और कुंभकादन भी थे।

कुछ और लोग कूर्मासन में बैठकर तप किया करते थे। इनके अलावा कृष्णाजिनधर, गोमुखासनासीन, दशाधिस्थिति योगकरण, नाडी शुद्ध, पंचाग्नि मध्य स्थिति में रहनेवाले, पद्मासन स्थिति में रहनेवाले, प्रणवासन स्थिति में रहनेवाले, पर्णासन स्थिति में रहनेवाले, पुरकासनु, फलमूलासनवाले, भद्रासन स्थिति में रहनेवाले, भूशयन, रेचक स्थिति में रहनेवाले, वल्कलधारी, वायुभोजक, सिंहासन स्थितिवाले, सुषुम्नयोगी, सूर्योन्मुखी, स्वस्तिकासन स्थिति में रहनेवाले - इस रूप में अनेक हुआ करते थे।

मैं ने इस विवरण को इसलिए दिया कि अब हमसे पहाड पर 'ध्यान मंदिर' की स्थापना करने पर भी वहाँ जाकर दस मिनट बैठकर श्री श्रीनिवास के ध्यान में रहने के लिए भी समय नहीं मिलता है। इसमें किसी का दोष नहीं है। बल्कि यह 'कलि' का लक्षण है।

ध्यान का विषय आया है इसलिए बता रहा हूँ - अन्य प्रदेशों में ध्यान में पहुँचने के लिए 15 मिनट लगते हैं लेकिन पहाड पर, आप कहीं भी बैठिए 5 सेकनों में ब्रह्मपदार्थ के पास पहुँच जाएँगे। इतनी 'विद्युत' रहनेवाला दिव्यधाम यह है। इसे समझकर अपने जन्मों को सार्थक बना लेंगे। इसलिए इस अध्याय को ' दर्शन की सफलता' कहा है।

तिरुमल दर्शन को 'सफल' बनाने के लिए पूर्वजों ने कुछ कार्य करने के लिए उपदेश दिया है। 'वेङ्कटाचल माहात्म्यमु' में ये विषय प्रस्तुत हैं।

सर्वप्रथम 'अन्नदान' करने को कहा गया है। क्षेत्र में चावल, सब्जियाँ आदि ले जाकर स्वयं पकाकर वहाँ पहुँचनेवाले यात्रियों को

अन्न खिलाने से उसे अन्नदान कहा जाता है। एक पचास साल पहले तक भी कुछ लोग और इस प्रदेश के किसान परिवार के लोग ऐसा किया करते थे। इस प्रकार पूरी यात्रा को 'तीर्थ जाना' बोलते थे। तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद भी स्वामी जी के प्रसाद के साथ साथ अन्नदान भी करते थे। यह अत्यंत प्रमुख विषय था।

मंदिर में 'मार्जन' करना (कूडा करक्ट को साफ करके रंगोली डालना) - यह अत्यंत प्रमुख माना जाता था। इसी को उत्तर भारत में कर सेवा कहते हैं। हमारे 'श्रीनिवास' की सेवा भी लगभग इसी प्रकार की सेवा है। इस सेवा से श्री श्रीनिवास का दर्शन निस्संदेह सफल होता है। इसी रूप में ग्राम निर्माण, (कमरों की व्यवस्था) जलसेचन सेवा (रथोत्सवादि के सामने पानी छिडकाते हुए प्रदेश को शुद्ध रखना) इसी को उत्तर भारत में 'करसेवा' कहते हैं। हमारे 'श्रीनिवास' की सेवा भी इसी प्रकार की है। इस सेवा के कारण श्रीनिवास के दर्शन में अवश्य सफल होंगे। इसी प्रकार ग्राम निर्माण(कमरों की व्यवस्था), जल सेचन (रथोत्सव आदि के समय सडक पर पानी छिडकाकर साफ़ करना - इस प्रकार आनेवाले रथ को 'मडि रथ' कहते थे), जल शालाएँ (पानी पिलानेवाले पानी घर), फूल मालाएँ बनाना, भूषणादि समर्पित करना, फूल-फल के बगीचे पालना, विद्यादान करना - बुजुर्गों का कहना है कि ऐसे कार्य तिरुमल पहाड पर करने से 'पुण्य' प्राप्त होगा।

सच है! कुछ शताब्दियों के पहले भक्त ही ये सभी काम किया करते थे। धीरे धीरे एक मंदिर की व्यवस्था - प्रशासन - परिचारकों के आने से यात्रियों को केवल 'दर्शन' अकेला ही बचा हुआ कार्य बन गया है। फिर भी आज स्वच्छंद सेवकों के रूप में कुछ महाभक्त इन सेवाओं में

भाग ले रहे हैं। इसीलिए कम से कम कुछ तो दर्शन की सफलता प्राप्त कर पा रहे हैं। वेद, संस्कृत, संगीत, नृत्य महाविद्यालय, चिकित्सा संस्थाएँ - आदि स्वामी की सेवा में मिले हुए हैं, यह यहाँ की विशेषता है। इन के द्वारा दर्शन श्री श्रीनिवास के अनुग्रह को प्रदान करता है।

श्री श्रीनिवास के पादपद्मों की अनेक सदियों से सेवा करके निरंतर स्वामी के मुखारविंद दर्शन से पवित्र हुए अन्नमाचार्य ने कुछ संकीर्तनों में अपनी वेदना व्यक्त की है कि तुम्हारे भक्त होने के बावजूद क्यों मुझे भी इस 'माया' से मुक्ति नहीं मिल रही है।

एक संकीर्तन को देख सकते हैं -

पल्लवि : एक्कडि मानुष जन्मम्बेत्तिन फलमेमुन्नदि
निक्कमु निनु ने नम्मिति नीचित्तंबिकनु ।। ए ।।

चरण 1: मरुवनु आहारंबुनु - मरुवनु संसारसुखमु
मरुवनु इंद्रियभोगमु - माधव नी मायलु
मरचेद सुज्ञानंबुनु - मरचेद तत्वरहस्यमु
मरचेद गुरुवुनु दैवमु - माधव नी माया ।। ए ।।

चरण 2: तगिलेद बहुलंपटमुल - तगिलेद बहुबंधंबुल
तगिलेद मोक्षपु मार्गमु - तलपुन एंतैन
अगपडि श्रीवेङ्कटेश्वर - अंतर्यामिवै
नगिनगि ननु नीवेलिति - नाका ई माया ।। ए ।।

(अर्थात् कैसे मानव जन्म मैं ने प्राप्त किया? मुझे तुम पर विश्वास है। खानपान, संसार सुख आदि को मैं भूल नहीं पा रहा हूँ। इंद्रिय भोग को मैं भूल नहीं पा रहा हूँ। यह सब आप की ही माया है। किंतु सुज्ञान,

तत्वरहस्य, गुरु आदि को मैं भूल रहा हूँ। यह भी तुम्हारी ही माया है। हे अंतर्यामी! इसलिए कृपया दर्शन देकर मुझे इन कष्टों से दूर करके मोक्ष मार्ग दिखाओ। सब कुछ तुम्हें समर्पित करनेवाले मुझ पर ही इस प्रकार की माया दिखाना क्या सही है स्वामी?)

ऐसे पश्चाताप हृदय को ही स्वामी सम्हलाते हैं। इसीलिए तरिगोंड वेंगमांबा, मलयाल स्वामी जैसे लोगों ने तिरुमल पहाड की गुफाओं में सुदीर्घ काल तक तप किया है। हमें इस भाव को मन में रखकर वैष्णव भागवत धर्म का आश्रय लेकर 'माया' से बचने के लिए श्रीनिवास के पादपद्मों की शरण में जाना चाहिए। यह श्रीकृष्ण के रूप में भगवान के द्वारा दिया गया आदेश भी है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य - मामेकम् शरणम् व्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो - मोक्षइष्यामि मा शुचः'

- ऐसा भगवद्गीता में श्रीस्वामी जी ने अर्जुन को उपदेश दिया। मेरी शरण में ही आओ। बाकी धर्म संदेहों को छोड दो। मैं तुम्हारे सभी पापों को मिटाकर तुझे मुक्त कर दूंगा। मत रोओ! कहते हुए स्वामी ने अर्जुन की वेदना को दूर किया।

श्रीनिवास की मूर्ति भी वरद हस्त से उपदेश देनेवाला रहस्य भी यही है, ऐसा सुप्रभात स्तोत्र में प्रतिवाद भयंकर अण्णन स्वामी ने वर्णन किया है।

पार्थाय तत्सदृश सारथिना त्वयैव
यौ दर्शितौ स्वचरणौ शरणम व्रजेति
भूयोऽपि मह्य मिह तौ करदर्शितौ ते
श्री वेङ्कटेशचरणौ शरणम् प्रपद्ये (प्रपत्ति - 11)

स्वामी ! अर्जुन के रथ के लिए अनुकूल सारथी बनकर, मेरी शरण में आओ कहकर जिन पादों को दिखाया, उन पादों को ही अब तुम्हारे वरद हस्त दिखा रहा है। तुम्हारे ऐसे चरणयुगल की शरण मांग रहा हूँ।

मेरे किसी भी भक्त के लिए संसार सागर सिर्फ 'घुटनों तक' के रूप में ही रहेगा। गहरा नहीं होगा। बहुत आसानी से पार करा दूँगा - ऐसा कहते हुए 'कटि हस्त' द्वारा स्वामी सूचित कर रहे हैं, 'कटि हस्त' दर्शन का रहस्य यही है।

इस रूप में शरणागति को प्राप्त करने पर ही स्वामी के अनुग्रह को प्राप्त कर सकते हैं। वह अनुग्रह अमृततत्व युक्त रहता है। वह सिर्फ हमें ही नहीं, हमारे बच्चों, उनके बच्चों और उनकी संतान को भी बचायेगा। इस भावना से सेवा करने पर ही श्री श्रीनिवास के दर्शन की सफलता प्राप्त होती है।

हैमोर्ध्वपुंड्र मजहन्मकुटम् सुनासम्
मंदस्मितम् मकरकुंडल चारुगंडम्
बिंबाधरम् बहुल दीर्घकृपाकटाक्षम्
श्रीवेङ्कटेश मुखमात्मनि सन्निधत्ताम!

इस श्लोक का मन में स्मरण करते हुए मंदिर से लौट आयेंगे।

अध्याय - 6
पुनर्दर्शन प्राप्तिरस्तु

श्री श्रीनिवास के दर्शन-कार्यक्रम का अंतिम पडाव वापसी यात्रा है। तब 'पुनर्दर्शन प्राप्ति रस्तु' कहकर अपने आप हमें आशीर्वाद कर लेंगे। सच तो यह है कि इसके पीछे मंदिर का संप्रदाय है। बुजुर्गों के द्वारा सुना हुआ बता रहा हूँ।

पूर्वकाल में सेवा पूरा होने के बाद अर्चक स्वामी को नमस्कार करके उनके आशीश की अनुमति लेते थे। तब वे 'पुनर्दर्शन प्राप्ति रस्तु' (फिर दर्शन करने का भाग्य प्राप्त हो) कहकर आशीर्वाद देकर भेजते थे। इसी को 'भगवान का वरदान सुगम है लेकिन पुजारी का वरदान दुर्लभ है' ऐसा बुजुर्ग लोग कहावत के रूप में कहते थे। अर्चक नहीं हो तो अपने संप्रदाय के गुरु या प्रतिनिधि, कोई न कोई इस आशीर्वाद को देते हैं।

स्वामी के विरह को झेलना बहुत कठिन है। पुराने समय में आलवार 'इस वियोग को झेल नहीं सकते' कहकर कई रूपों में अपनी वेदना प्रकट करने के कई संदर्भ पाशुरों में प्रकट किया। गोदा देवी का विरह वर्णन यही है। सुविधाओं से दूर उस युग में भी श्रीकृष्ण देवराय जैसे राजा इतनी बार पहाड पर चढकर आये, जानने पर पुनर्दशनाभिलाषा में स्वामी की आकर्षण शक्ति का पता चलता है।

यहाँ एक प्रश्न उठ खडा होता है कि हम स्वामी को देखने की इच्छा रखते हैं। या स्वामी हमें देखने की इच्छा रखते हों? सच तो यह है कि हम देखने की इच्छा रखने में भी असमर्थ हैं। हममें उस इच्छा को पैदा

करनेवाले वे ही हैं। इसलिए हम उन पर दिखानेवाली भक्ति से अधिक हम पर श्री श्रीनिवास का वात्सल्य भाव ही अधिक है। श्रीमद्रामायण के 'सुंदर कांड' के अंत में यह रहस्य खुलता है।

सीतादेवी हनुमान से कहती हैः ''मुझे रावणासुर ने दो महीनों का समय दिया है। उसमें अब केवल एक महीना ही बचा है। इस महीने भर में किसी भी रूप में मैं अपने प्राणों को बचा कर रखूंगी। महीने के बाद एक पल के लिए भी जिंदा नहीं रहूंगी। इसके अंदर ही मेरे स्वामी को आना है! मेरा उद्धार करना चाहिए। यह विषय तुम अपने स्वामी को बता दो।'' ऐसा कहती है।

इस विषय को हनुमान ने श्रीराम को सुनाया। तब राम ने कहाः

चिर जीवति वैदेही यदि मासम् धरिष्यति
क्षणम सौम्य न जीवेयम् विना तामसितेक्षणाम्

अगर वह एक महीना जीवित रहेगी तो उसे कोई कष्ट नहीं है। कितने भी समय के लिए जीवित रह सकती है। लेकिन अब मैं एक पल के लिए भी उसके विरह को झेल नहीं सकता हूँ। चलो चलते हैं!

तिरुप्पाण आलवार के मामले में भी श्रीरंगनाथ भी इसी प्रकार कहते हैं। ''लोकसारंगमुनी! तुम कहते हो कि वह मंदिर में मत आये। ठीक है मुझे ले जाओ जी! उस गायक शिखामणी के 'नाद नीराजन' के प्रति मैं मुग्ध हो गया हूँ। उसे देखे बिना रह नहीं सकता हूँ।'' श्री रंगनाथ स्वामी ऐसा कहते हैं।

हमारा हाल भी कुछ ऐसा ही है ! दर्शन संकल्प उन्हीं का है। दर्शन देनेवाले भी वे ही हैं। हम उनके आश्रित हैं। हमें स्वतंत्रता नहीं है। इस

प्रकार की परतंत्रता की भावना रखनेवाले वैष्णव भक्त में राग-द्वेष संपूर्ण रूप से मिट जाते हैं।

तभी श्री श्रीनिवास का 'दर्शन' एक अनुभूति के रूप में बदल जाती हैं। उस अनुभूति में रहनेवाले व्यक्ति को प्रत्येक जगह श्रीनिवास ही दिखाई देते हैं।

'धन्य हो गए हे देव - फिर से दर्शन दो महानुभाव!' इस प्रकार प्रत्येक प्राणी प्रार्थना करता है। पुनः आना बहुत कठिन है, इसलिए श्रीनिवास के मंदिर कई हजार विश्वभर में खोले जा रहे हैं। फिर भी लाखों लोग तिरुमल पहाड पर आ रहे हैं - क्योंकि वह स्वामी निजी इच्छा से यहाँ विराजित हुए। इसी अर्थ में तिरुमल के लिए 'भूलोक वैकुंठ' नाम सार्थक है।

1. तरिगोंड वेंगमांबा एक महोयोगिनी है। उस मातृमूर्ति ने अपनी 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यमु' काव्य रचना में ज्ञान और भक्ति योगों को अनेक प्रकार के विघ्न होने का संकेत देते हुए तिरुमल के तीर्थों के स्नान के द्वारा सात्विक ज्ञान प्राप्त होने की बात कहकर - - अंत में' कहा कि इसलिए उन तीर्थों के स्नान से सिद्धि प्राप्त होगी। इसलिए अत्यंत दृढशरीर वाले श्रीवेङ्कटेश्वर को कैंकर्य समर्पित करना ही पुरुषार्थ है।'' कहते हुए क्षेत्र दर्शन - सेवा फल के बारे में विवरण दिया है। इसलिए निरंतर भक्त को स्वामी की सेवा तथा स्वामी के दर्शन को चाहते रहना चाहिए।

अध्याय - 7
पुकारते ही दर्शन देनेवाले अंतर्यामी

श्री श्रीनिवास तिरुमल पहाड पर बसने के बावजूद भी वे अंतर्यामी के रूप में सकलजन और समस्त प्राणियों के हृदयों में स्थिर वास करते रहते हैं। किसी के भी मन से पुकारने पर वे दर्शन देते हैं। इसलिए 'पुकारने पर दर्शन देनेवाले स्वामी' के रूप में कलियुग में केवल श्रनिवास को ही नाम मिला है।

कृतयुग में नरसिंह के रूप में प्रह्लाद को जवाब दिया। अपने अतंर्यामी तत्व का निरुपण किया। खंभे में भी दर्शन दिया।

त्रेतायुग में नरवानर बल से रावण का संहार करने के बाद इस सृष्टि की रक्षाकर सकनेवाले और नष्ट कर सकनेवाले स्वामी दोनों रूपों में अपने को सिद्ध किया।

द्वापर युग में कई बार अपने 'विश्व' रूप का प्रदर्शन करके अपने में सभी है, सब में वे है, ऐसा निरुपण किया है।

कलियुग में श्रीनिवास भी वही काम कर रहे हैं। ऋषि, मुनि जिस परमपद को प्राप्त करने के लिए उद्विग्न हो रहे हैं, शास्त्रादि जिस दिव्य रूप की व्याख्या करने में असफल हो गए हैं - उस परमपद को स्वयं सबके हृदयों में पैदा करते हुए रहना ही श्री श्रीनिवास की अवतार महिमा है।

इसलिए 'श्रीनिवास की लीलाएँ' अनंत हैं। भक्तों की अनुभूतियाँ कई हजार कहानियों के रूप में व्याप्त हुई हैं। लाइलाज रोग मिट गए हैं। विवाह संपन्न नहीं हो रहा है, ऐसा सोचने वाले का विवाह हो जाता है।

नौकरी नहीं मिल रही है ऐसा सोचनेवाले की नौकरी लग जाती है। 'वीसा' भी मिल जाता है। गरीब आदमी लखपति बन जाता है - अज्ञानी ज्ञानी बन जाता है। इतने असाध्य कार्यों को सुसाध्य बनाकर श्रीनिवास सब में मैं हूँ ऐसा भाव जगाकर, मैं सब का हूँ, यह एक बृंदावन है - राग द्वेष यहाँ काम नहीं करते - ऐसा, उपदेश देते हुए नित्य ब्रह्मानंद मग्न ऋषियों के बीच में परमानंद स्वरूप के रूप में विराजमान हैं।

श्रीनिवास कलियुग में धर्म निर्वहण के लिए अर्चामूति के रूप में प्रकाशवान हैं।

सर्वागमानामाचारः प्रथमम् परिकल्प्यते
आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः

व्यास भगवान ने विष्णु सहस्रनाम में ऐसा बताया है - आगम से आचार विधि का पता चलता है। आचार में ही धर्म सत्य स्वरूप के रूप में निरुपित होता है। उस धर्म की रक्षा श्री महाविष्णु करते रहते हैं।

इसलिए 'धर्मप्रचार परिषद' नाम से 'धर्म रक्षण संस्था' तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् की ओर से एक संस्था दायित्व निभा रही है। अपनी जगह पर आप धर्म की रक्षा करने से, उस पहाड पर आकर श्रीनिवास की सेवा करने से होनेवाले पुण्य के समान पुण्य देगा। इसलिए कि श्री श्रीनिवास धर्मस्वरूप हैं।

'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह उक्ति स्वामी के अंतर्यामी रूप में सब में बसे रहने का निरूपण करनेवाली उक्ति है। धर्म स्फूर्ति से जीना, दूसरों को जीने देना - ये दोनों 'अंतर्यामी' की पूजा में प्रयुक्त विधान हैं। वे अतंर्यामी जहाँ ढूंढो वहाँ मिलेंगे। किसी भी मूर्ति की पूजा करने पर भी

दर्शन देनेवाले वे ही हैं। फिर भी उनका विशिष्ट अस्तित्व 'वेङ्कटाद्रि' में स्थित है।

अन्नमय्या ने एक संकीर्तन में इस भाव को अत्यंत अद्भुत रूप में प्रकट किया है।

पल्लवि : नी वनगनोकचोट निलिचि वुंडुट लेदु
नीवनुचु कनुगोन्न निजमेल्ल नीवे ।। नी ।।

चरण 1: तन यात्मवलेने भूतमुल यातुमलेल्ल
अनयंबु कनुगोन्न यतडे नीवु
तनु कन्नतल्लिगा तगनितर कांतलनु
अनघुडै मदि जूचु नतडे नीवु ।। नी ।।

चरण 2: सतत सत्यव्रताचारसंपन्नुडै
अतिशयंबुग मेलगुनतडे नीवु
धृति दूलि द्रव्यंबु तृणमुगा भाविंचु
हतकामुकुंडैन यतडे नीवु ।। नी ।।

चरण 3: मोदमुन सुखदुःखमुलु नोक्करीतिगा
आदरिंपुचुनुन्न यतडे नीवु
वेदोक्तमतिमैन वेंकटाचलनाथ
आदियुनु नंत्यंबु नंतयुनु नीवे ।। नी ।।

(अर्थात् हे स्वामी ! तुम एक जगह पर स्थिर खडे रहनेवाले नहीं हो। जहाँ देखो वहाँ तुम हो। अपनी आत्मा की तरह प्राणी मात्र की आत्मा हो। ऐसे सोचनेवाले आप ही हैं। पराया स्त्रियों को अपनी माँ के रूप में देखने वाले तुम ही हो। सदा उन्नत गुणों केसाथ सदा सत्यव्रत धारण किए

रहते हो। पराये धन को तुम तृणप्राय समझते हो। सुख-दुखों को एक जैसा मोद के साथ स्वीकार करनेवाले तुम एक ही हो। तुम वेदोक्तमति हो, आदि और अंत भी तुम ही हो हे वेङ्कटाचल नाथ !)

मानव ही - माधव हैं - कब? 'आत्मवत सर्वभूतानि - यः पश्यति स पंडितः' ऐसा बुजुर्गो का कहना है। अपने में तथा अखिल भूतों में एक जैसा है - समरस रूप में रहनेवाले के रूप में पोतना ने इस महासंस्कार को प्रह्लाद के द्वारा दिखाया है। ऐसे वाले में श्री श्रीनिवास अंतर्यामी के रूप में रहते हैं। इसीलिए श्रीपति के दासों की कभी कोई हानि नहीं होती है।

'कन्नु दोइकिनि नन्यकांतलडुंबैन - मातृभावंबुन मरलुवाडु' (मातृवत परदारांश्च) ऐसा, प्रह्लाद के द्वारा परस्त्री में मातृमूर्ति को देखने के गुण को प्रस्तुत किया है। श्रीराम ऐसे व्यवहार करनेवाले मानवोत्तम हैं।

सतत सत्य व्रताचार, संपन्न दीक्षित व्यक्ति के निकट ही रहते हैं परमात्मा। कई महापुरुषों ने इस सत्य व्रत पालन से मुक्ति प्राप्त करके देवसदृश बनकर प्रशंसा प्राप्त की है। प्रशंसा प्राप्त भी कर रहे हैं। अवधूत श्रीशंकर, श्रीमद्रामानुज, मध्वाचार्यादि आचार्य पुरुष सत्यव्रत ही थे। इन सब में श्री श्रीनिवास हैं।

'परद्रव्याणी लोष्ठवत' कहा गया है। परधन को मिट्टी के रूप में माननेवाले भी देवता समान हैं। श्रीमद्रामानुज, अच्युत पदांबुज पर व्यामोह रखते थे न कि सोने पर। इसीलिए उनको सारा विश्व तृणप्राय दिखाई देता था। उनमें भी श्री श्रीनिवास दर्शन देते हैं।

द्वन्द्वों को समरूप में देखनेवाले योगियों के (सुख-दुःख, कीर्ति-अपकीर्ति, मान-अपमान, जन्म-मरण) भी श्रीनिवास निकट रहते हैं।

अंतिम उक्ति 'वेदोक्तमति' श्रीनिवास ही है, यह बडी उक्ति है। वेद मंत्र में गूढ़स्थ रहस्य भी श्री श्रीनिवास ही हैं।

बलि चक्रवर्ती ने वामन मूर्ति को त्रिपाद भूमि को दान करते समय 'वेदप्रामान्यविदे' कहकर यशोगान किया है। इसलिए वेद नाद में प्रतिध्वनित होनेवाला प्रणव भी श्रीनिवास ही है।

इस रूप में फैले श्रीनिवास को पहाड पर दर्शन करने का सौभाग्य सभी प्रकार के यज्ञों से भी अधिक फल देता है। वही स्वामी के दर्शन की परमपद लक्ष्यस्फूर्ति है।

'तद्विष्णोः परमम पदम सदा पश्यंति सूरयः' - यह वेद का प्रतिपादन है। महायोगी अपनी तपोनिष्ठा में जिस परमपद के दर्शन करते हैं वह परमपद ही श्री श्रीनिवास के मंदिर की 'मूर्ति' है। वामनमूर्ति के त्रिविक्रम स्वरूप को प्रतिपादित करनेवाली बलि कथा के लिए प्रमाण वैखानसों के द्वारा पूजित परम विष्णुतत्व ही है।

त्रीणि पदा विचक्रमे - विष्णुर्गोपा अदाभ्यः
ततो धर्माणि धारयन् - विष्णोः कर्माणि पश्वतयतो
वृतानि पस्पशे - इंद्रस्य युज्यस्सखाः

- इस वेद मंत्रानुसंधान से ही श्रीनिवास की आराधना होती है। इसलिए 'धर्म' का परिरक्षण करनेवाले प्रत्येक में श्रीनिवास का 'अंतर्यामी' तत्व स्पष्ट दिखाई देता है। यही माधव मानव के रूप में अवतरित होकर प्राप्त करनेवाला परमार्थ है। इसी दृष्टि से भागवतों की आराधना करने से भगवान की आराधना करने के समान है, ऐसा संदेश देनेवाला वैष्णव धर्म भारत भर में फैल गया है।

इस ज्ञान को प्राप्त करना ही भक्ति की पराकाष्ठा है। इसी में क्षेत्र दर्शन की सफलता भी है। तब तक नाक बंद होने से चंदन की गंध को ग्रहण नहीं करने की तरह बडी भक्ति है, ऐसा हमारे समझने पर भी उस का परम प्रयोजन भगवदानुभूति हमें नहीं मिलती है। कितने तीर्थों में डुबकी लगाने पर भी कडुवाहट दूर नहीं होगी। हम जैसे लोग तीर्थों को ही अपवित्र बनाते हैं। यह जानकर ही तीर्थ पवित्रता की रक्षा करके उस 'अंतर्यामी' का अपमान न करना ही बडी बात है। तिरुमल और तिरुपति धर्म क्षेत्र हैं।

आज के दिनों में सब को जानना चाहिए कि हिंदू धर्म मनुष्य को ठीक करने के लिए उद्भूत होने वाला धर्म है। इसलिए भगवान को भी मनुष्य के रूप में अर्चना करने के संप्रदाय का विकास किया है। भगवान को संपूर्ण कल्याण गुण के रूप में मानते हुए, उन कल्याणकारी गुणों को मनुष्य को भी प्राप्त करना चाहिए, ऐसा ही इस संप्रदाय का दिव्य संदेश है। इसलिए भगवान और भक्त को जोडनेवाले संधान क्षेत्रों के रूप में दिव्य क्षेत्रों के दर्शन महात्माओं ने किया है।

मंदिरों के द्वारा मनुष्य सुधार प्राप्त करके राजस और तमो गुणों को पार करके सत्व गुणों का प्रधान बनकर समाहित चित्त से समाज की रक्षा करनेवाले उत्तम एवं उन्नत गुणों को व्यक्ति बनेगा समझकर हमारे पूर्वजों ने मंदिरों को विद्याकेंद्रों (घटिका स्थान) के रूप में बसाया है। सद्गुणों को सिखाया है। अंतरंग को हरि को समर्पित करके जीवन जीने का उपदेश दिया। अन्नमय्या ने एक कृति में इस 'अंतरंग' समर्पण की प्रधानता को उद्घाटित किया -

पल्लवि : अंतरंगमेल्ल श्रीहरिकि ओप्पिंचकुंटे
विंत विंतविधमुल वीडुगा बंधमुलु ।। अंत ।।

चरणालु : मनुजुडै फलमेदि मरि ज्ञानियौदाक
तनु नेत्ति फलमेदि दय गलुगुदाक
धनिकुडै फलमेदि धर्ममु सेयुदाक
पनिमालि मुदिसिते पासेना भवमु ।। अंत ।।

चदिवियु फलमेदि शांतमु कलुगुदाक
पेदवेत्ति फलमेदि प्रियमाडुदाक
मदिगल्गि फलमेदि माधवुदलचुदाक
एदुट तानु राजैते एलेना परमु ।। अंत ।।

पावनुडै फलमेदि भक्ति कलिगिन दाक
जीविंचि फलमेदि चिंत दीरुदाक
वेवेलु फलमेदि वेंकटेशु कन्नदाक
भाविंचि तादेवुडैते प्रत्यक्षमौना ।। अंत ।।

(अर्थात् अगर अंतरंग को श्रीहरी को समर्पित नहीं करेंगे तो इहलोक बंधन नहीं टूटेंगे। मनुष्य जन्म सार्थक भी नहीं होगा। दान धर्म नहीं करने से धनी होने से भी कोई फायदा नहीं है। शांत चित्त के बिना पंडित बनने से भी फायदा नहीं है। मन में माधव के प्रति प्रेम के बिना जन्म सार्थक नहीं होगा। भक्ति किए बिना पवित्र होने का फल नहीं मिलेगा। चिंता दूर किए बिना जीवन सार्थक नहीं होगा। वेङ्कटेश के दर्शन के बिना जीवन की कोई फलप्राप्ति नहीं होगी।)

इस गीत के लिए व्याख्या की जरूरत नहीं है। लेकिन अंतिम बात तो बहुत मुख्य है। 'अहं ब्रह्मास्मि' कोई अपने को मानना चाहता है तो मानने दो। उस प्रकार करने से भी ज्ञान-दया-धर्म-शांति-प्रिय-माधव का चिंतन - भक्ति - निश्चिंत - होकर श्रीनिवास के कहने पर ही - भगवान

दर्शन नहीं देंगे, यह बताते हुए अन्नमाचार्य ने अत्यद्भुत रूप में उपदेश दिया है।

श्री श्रीनिवास के दर्शन का मतलब अंदर के परब्रह्म का दर्शन करना ही है। ऐसे भाव को श्रीमद्रामानुज जी तत्व दृष्टि से ग्रहण करते हैं तो अन्नमाचार्य के द्वारा सामान्य प्राणी के अनुभव सत्य के रूप में प्रस्तुत करनेवाला एक अद्भुत संकीर्तन है -

पल्लवि : अंतर्यामि अलसिति सोलसिति
इंतट नी शरणिदे चोच्चितिनी ।। अंत ।।

चरण 1 : कोरिन कोर्केलु कोयनि कट्लु
तीरवु नीववि तेंचक
भारपु पग्गालु पापपुण्यमुलु
नेरुवुनबोवु नीवु वद्दनका ।। अंत ।।

चरण 2: जनुल संगमुल जक्करोगमुलु
विनुविडुववु नीवु विडिपिंचक
विनयपु दैन्यमु विडुवनि कर्ममु
चनवदि नीवदु संतपरचका ।। अंत ।।

चरण 3: मदिलो चिंतलु - मइललु मरुगुलु
वदलवु नीववि - वद्दनक
एदुटने श्रीवेङ्कटेश्वरा नीवदे
अदनुगाचितिविवि अट्टिट्टनक ।। अंत ।।

(अर्थात् हे अंतर्यामी ! हे वेङ्कटेश्वर स्वामी ! मैं पूरी तरह थक कर तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम्हारी आज्ञा के बिना कामनाओं की जंजीरे

नहीं टूटेगी। पाप पुण्य रूपी बंधन भी तुम्हारी आज्ञा के बिना नहीं टूटेगी। जन जन के सकल रोग तुम्हारे कहने तक दूर नहीं होंगे। तुम्हारे आदेश के बिना लोगों में विनय नहीं पनपेगा। मन के मैल तुम्हारी आज्ञा के बिना दूर नहीं होंगी। इसलिए स्वामी अंतर्यामी अब मुझ पर कृपा करके मुझे शरण दो।

अन्नमय्या के द्वारा दिये उपदेश की शरणागति तत्व के 'परतंत्र' भावना इस गीत में स्पष्ट होती है। हम अपने आप में 'अंतर्यामी' के लिए परतंत्र है। यह अंतर्यामी के द्वारा खेलनेवाला नाटक है। इसकी जानकारी के बिना उस खेल में हम शामिल होते हैं। गजेंद्र के द्वारा मगर के हाथों में गिरना ऐसा ही खेल है। सरोवर में जाने के लिए किसने कहा है? पानी निकालने के लिए किसने कहा? किसने मगर को पकडने के लिए कहा?

अंत में जिसने इन बंधनों को बनाया, उसने ही आकर रक्षा की है। कब? हजार वर्षों के सुदीर्घ संघर्ष के बाद -

लावोक्किंतयु लेदु धैर्यमु विलोलंबय्ये प्राणंबुलुन्
ठावुल दप्पेनु मूर्छ वच्चे तनुवुन् डस्सेन् श्रमंबय्येडिन्
नीवे तप्प नितःपरम्बेरुग मन्निंपदगुन दीनुनिन
रावे ईश्वर! काववे वरद! संरक्षिंचु भद्रात्मका!

(अर्थात् मेरा पूरा धैर्य टूट गया। थोडी भी शक्ति नहीं है। मेरे प्राण निकल रहे हैं। मैं बेहोश हो रहा हूँ। मेरा शरीर भी थक गया है। अब तुम्हें छोडकर मैं किसी की शरण में नहीं जा सकता हूँ। मुझ जैसे दीन को क्षमा करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। हे परमात्मा! हे वरद हस्त! मेरी रक्षा करो।)

ऐसी वेदना से पीडित होकर शरण मांगने पर ही स्वामी ने एक पल में चक्र (सुदर्शन) को भेजकर गजराज को बंधन मुक्त किया है।

सच तो यह है कि अन्नमय्या ने 'थक' कर इस संकीर्तन को गाया न समझकर, मनुष्य सभी एक संदर्भ में थक जाते हैं, उन सबका पक्ष लेकर दीन बनकर अन्नमय्या ने आलपन किया, ऐसा समझना सार्थक लगता है।

स्वामी जी रक्षा कर रहे हैं इसलिए यह जीवन कम से कम इस रूप में है। नहीं तो तट तोडनेवाली गोदावरी की तरह कभी पाप सागर में मिलकर बगैर किसी स्मरण के मिट जाता। ऐसी भावना मन में होने पर स्वामी के दर्शन से अच्छा मार्ग प्राप्त होने की सार्थकता मिलेगी। उस मार्ग को ही त्यागराज स्वामी ने 'तेर तीयगरादा!' (यवनिका हटा दीजिए) कहकर वेदना से याचना की है। पुरंदर दासादि हरिदासों ने इस रूप में कीर्तन करके 'अंतर्यामी' के निकट रहकर जीवन को सार्थक बनाया है। वही उत्तम मार्ग है। इस मार्ग में मनुष्य विनय के साथ अपने को अल्प, अपराधी मानते हुए 'कृपण' भाव को प्राप्त करके स्वामी की कृपा की याचना करते हैं। अन्नमय्या ने एक कीर्तन में इस भाव को बहुत अच्छें ढंग से व्यक्त किया है। यही ज्ञान प्राप्त होने का प्रमाण है।

पल्लवि : पुरुषोत्तमुडवीवु - पुरुषाधमुड नेनु
धरलोन नायंदु - मंचितनमेदि ।। पुरु ।।

चरण 1: अनंतापराधमुलु - अदु मेमु सेसेवि
अनंतमैन दय - अदि नीदि
निनु नेरुगकुंडेटि - नीचगुणमु नादि
ननुनेडय कुंडेटि - गुणमु नीदि ।। पुरु ।।

चरण 2: सकल याचकमे - सरस नाकु पनि
सकलरक्षकत्वमु - सरि नी पनि
प्रकटिंचि निन्नु दूरे - पलुके नाकिप्पुडुनु
वेकलिवै ननुगाचे - विधमु नीदि ।। पुरु ।।

चरण 3: नेरमिंतयु नादि - नेरुपिंतयु नीदि
सारेकु अज्ञानि नेनु - ज्ञानिवि नीवु
ई रीति वेङ्कटेश - इट्टे नन्नु एलितिवि
धारुणिलो निंडेनु प्र - तापमु नीदि।। पुरु ।।

(अर्थात् तुम पुरुषोत्म हो और मैं पुरुषाधम हूँ। मुझमें कौन-सी अच्छाई है? मैं ने अनंत पाप किए हैं। दूसरी ओर तुम्हारी अनंत दया है। तुम्हें नहीं जानने का नीच गुण मेरा है। सब कुछ मांगने की याचक वृत्ति मेरी है और सभी रूपों में रक्षा करने का गुण तुम्हारा है। सभी प्रकार के अपराध मेरे हैं। मैं बहुत बडा अज्ञानी हूँ। तुम ज्ञानी हो। हे वेङ्कटेश ! इसलिए मुझपर कृपा वृष्टि बरसाकर मेरा उद्धार करो।)

क्षमायाचन :

''अज्ञानिना मया दोषानशेषान् विहितान् हरे
क्षमस्व त्वम क्षमस्व त्वम शेषशैलशिखामणे''

अज्ञानी होकर मैं ने अपराध किए हैं। हे शेषशैलाधिपति ! तुम उनकी क्षमा करो। क्षमा करो। मेरा उद्धार करो।

।। श्रीनिवासाय मंगलम् ।।